स्थूलस्थूलतरैरयन्त्रपुभवैस्सूक्ष्माच्च
सूक्ष्मोत्तमैः नेत्रानन्दविवर्द्धनैक
सुभगैःस्पष्टाक्षरैश्शोभिते। लोका
नामुपकारकारणकृते वेणीतटेसं-
स्थिते नानावर्णविभूषिते बुधनुते
यन्त्रालयेमुद्रितः ॥ १ ॥ योयोऽ-
शुद्धोमयाचात्रदृष्टस्सोवै सुशोधि
तः। योनदृष्टस्तुतं शोध्यपठनी-
योमहात्मभिः॥ २ ॥ अनुवादेप्य
ऽशुद्धस्याद्यदितर्हिक्षमाधनैः। त-
मशुद्धंसुशोध्याथपठनीयो मनी-
षिभिः ॥ ३ ॥ भाषाऽज्ञानवशा-
देव शोधितोनमयात्रसः । भाषा
कर्त्तुं रसान्निध्यात्तस्मिन्दोषोन-
विद्यते ॥४॥ स्वामी ब्रह्मानन्दतीर्थः

भूमिका

इहखलुकश्चिद्दाक्षिणात्यः शमादिगुणसंपन्नः सर्वविद्यापारङ्गतः शारीरकसूत्रवृत्तिभुवनेश्वरीतिलकाद्यनेक ग्रन्थरचनानिपुणः परमहंसपरिव्राजक श्रीब्रह्मानन्दतीर्थाभिधः पृथिवींपर्यटमानः कदाचित् जम्बूनगरंप्रविश्य सुखेनोवास तत्र केश्चिन्न्यायमदिरोन्मत्तैर्न्यायशास्त्रंयुक्तियुक्तं वेदान्तमीमांसाशास्त्रंयुक्तिरहितमिति प्रलपितमुक्तस्वामिनाश्रुतं ततस्तेन पूर्वं लवपुरेपि श्रुतमिदंवचनमिति मनसिसंचिन्त्य तेषां न्यायमधुपानजन्यमहामोहशान्तये अयं तार्किकमोहप्रकाशाख्योग्रन्थो रचितः। अत्रसर्वसाक्षिभूतं वेदान्तप्रसिद्धमेकं शुद्धं

संभवेन दयानिधिनाशमादिगुणसंपूर्णेन सकलदर्शनतत्वज्ञेन पांचालदेशान्तर्गत जागरूकपुरनिवासिना श्रीमत्परमहंसपरिव्राजक श्री प्रकाशानन्दपुरिस्वामिना भाषानुवादःकृतः पूर्वमप्ययसिन्द्रप्रस्थेकाशीनाथशर्मणा सूक्ष्मायसाऽक्षरैर्मुद्रितःपुनरिदानीं सएव भाषानुवादसहितः समीचीनतयामुद्रणाय ग्रन्थकृद्दत्ताधिकारिणा मया बहुजनोपकारायनिजद्रव्यव्ययेन निजइण्डियन्यंत्रालये शुद्धसंबद्धसमीचीनस्थूलायसाक्षरै मुद्रितःप्रकाशितश्च

चिन्तामणि घोष

प्रयागक्षेत्रनिवासी

चैतन्यंसत्यमन्यन्मिथ्येति ग्रन्थकृन्मतंत-
त्सिद्धये परमाणुवादाऽसत्वंतत्प्रसंगाज्जी
वभिन्नेश्वराऽसत्वंन्यायमतप्रसिद्धन्याया-
नामाभासत्वं सत्कार्य्याऽसत्कार्य्यवाद-
योराभासत्वमर्थादनिर्वचनीय वादस्यो-
त्कर्षत्वं आकाशस्योत्पत्तिमत्वं तत्प्रस-
ङ्गादात्मनः स्वतस्सिद्धत्वं रामानुजमत-
सिद्धजीवस्वरूपाऽसत्वमात्मनो विभुत्व-
नानात्व वादिमतेसुखदुःखसाङ्कर्य्यादि-
दोषाऽनिर्मोक्षत्वंच प्रतिपादितं तथा च
अस्य ग्रन्थस्य मतान्तरप्रसिद्धयुक्तयाभास-
तिरस्कारपूर्वक पदार्थतत्वनिर्णयप्रधान
त्वात्तत्वजिज्ञासूनामुपकारकत्वमवान्त
रप्रयोजनं सूचितंमुख्यंन्तु तदेवयत् वेदा
न्तसिद्धंमोक्षाख्यं तत्संबन्धित्वात् सोय-
मुपकारोभाषानुवादेनैवसर्वसाधरणोभ-
विष्यतीतिमत्वाप्रार्थितेनकेनचिद्गौडान्वय

संभवेन दयानिधिनाशमादिगुणसंपू-
र्णेन सकलदर्शनतत्वज्ञेन पांचालदेशा-
न्तर्गत जागरूकपुरनिवासिना श्रीमत्प-
रमहंसपरिव्राजक श्री प्रकाशानन्दपुरि-
स्वामिना भाषानुवादःकृतः पूर्वमप्यय-
मिन्द्रप्रस्थेकाशीनाथशर्मणा सूक्ष्मायसा
ऽक्षरैर्मुद्रितःपुनरिदानीं सएव भाषानु-
वादसहितः समीचीनतयामुद्रणाय ग्र-
न्थकृद्दत्ताधिकारिणा मया बहुजनोप-
कारायनिजद्रव्यव्ययेन निजइण्डियन्-
यंत्रालये शुद्धसंबद्धसमीचीनस्थूलायसा-
क्षरै र्मुद्रितःप्रकाशितश्च

चिन्तामणि घोष

प्रयागक्षेत्रनिवासी

असत्व नैयायिकों के अनुमानों को दुष्टत्व सत्कार्य-वाद और असत्कार्यवाद के निरास पूर्वक अनिर्व-चनीयवाद का उत्कर्ष आकाश की उत्पत्ति उसके प्रसङ्गसे आत्माको स्वतःसिद्धत्व और रामानुज मत सिद्ध जीव स्वरूप खण्डन और आत्माको विभु और नाना (अनेक) मानने वालों के मतमें सुख दुःख साङ्कर्यादि दोषें के अवारणीयत्व दिखाया है और तत्वजिज्ञासुओं के निमित्त नाना मतें की कुयुक्तियें का तिरस्कार करके पदार्थतत्व का निर्णय इस ग्रंथमे किया है किन्तु विशेप करके वेदान्तसिद्ध मोक्षही का उपाय तत्वनिर्णयद्वारा वताया है यह ग्रन्थ संस्कृत में था मनमें यह आई कि इस ग्रंथ का अनुवाद यदि भापा में होता तो आधुनिक कम संस्कृत व राजभापा जानने वाले जिज्ञासुओं का वड़ा उपकार होता इस निमित्त पंजाव देशान्तरगत हुशियार पुर निवासी ब्राह्मणकुलोद्भव दयालु व शम-दमादि गुण संपन्न व सकल दर्शन तत्ववेत्ता श्रीम-त्परमहंसपरिव्राजक श्रीस्वामी प्रकाशानन्दपुरीजी से भापानुवाद करने की प्रार्थना की उन दयालु महा पुरुपने परोपकारार्थ इस ग्रन्थ का भापानुवाद किया मैं उन महात्मा को कोटि २ धन्यवाद देता हूं। यह

* सूचीपत्रम् *

पृष्ठ प्रतिपाद्यविषयाः ॥

(अथदयानन्दमोहप्रकाशः)

इति

शुद्धाऽशुद्धपत्रमिदं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	व्रह्म	ब्रह्म
६	२	सोकायत	सोकामयत
८	५	ब्याप्ति	व्याप्ति
९	१	वुद्धि	बुद्धि
९	२	वुद्धौ—वुद्धि	बुद्धौ—बुद्धि
९	५	ब्यापार	व्यापार
१२	८	वहूनि	बहूनि
१४	६	वुद्धौ	बुद्धौ
१४	७	वुद्धि	बुद्धि
१४	८	वोद्धव्यं	बोद्धव्यं
१७	६	वाह्य	बाह्य
१९	७	वोध्यं	बोध्यं
२०	५	दृष्ठा	दृष्टा
२०	७	दृष्ठाः	दृष्टाः
२५	२	विशिष्ठ	विशिष्टा
२९	१	वलेन	बलेन
३१	१	वन्धनः	बन्धनः
३७	९	साववयव	सावयव
४१	३	चतुविध	चतुर्व्विध
४३	४	वोध्यं	बोध्यं

शुद्धाऽशुद्धपत्रम्॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	६	नव्योम	नोव्योम
५०	१	व्यभिचारात्	व्यभिचारात्
५१	३	वहुत्रात्	वहुत्वात्
५२	४-८	वहु द्रव्य	वहु द्रव्य
५७	४	वोध्यं	वोध्यं
५८	४	सत्क्यार्य	सत्कार्य
६६	१	क्यार्य	कार्य
६७	२	वोध्यं	वोध्यं
६८	८	सम्वन्ध	सम्वन्ध
६९	१	संवद्ध	सम्बद्ध
७०	४	व्यवहार	व्यवहार
७४	५	वाह्य	वाह्य
७६	४	वाधित	वाधित
७७	१	वाधात्	वाधात्
८०	६	व्यापारे	व्यापारे
९१	१	वाधात	वाधात्
९२	६	प्रमाणाऽद्यभाव	प्रमाणाद्यऽभाव
९५	३	व्यभिचारात्	व्यभिचारत्
९९	४	स्वरुपा	स्वरूपा
१०१	६	द्रव्य	द्रव्य
१२८	१३	वीन्द्रथं	वीन्द्रथं
१३४	३	अनुष्टेया	अनुष्ठेया
१२५	३	रुत्कर्पात्	रुत्कर्पात्

ओं नमोगणेशाय ॥

तार्किकमोहप्रकाशः ॥

नत्वा गुरुपदाम्भोजं ब्रह्मविद्यां विभाव्य च। तार्किकाणां (महामोहः) संग्रहेण प्रकाश्यते ॥ १ ॥ इह खलु तार्किकाः प्रलयकाले विभक्ताः परमाणवो निश्चेष्टा आकाशे वर्तन्ते प्रलयावसाने सर्गादौ द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकं

गुरुचरण कमलको नमस्कार और ब्रह्मविद्या का चिन्तन करके तार्किकोंके महामोहका संक्षेप से प्रकाश किया जाता है ॥ १ ॥ नैयायिक लोग कहते हैं कि प्रलय कालमें परमाणु अलग २ और क्रियासे हीन होकर आकाशमें रहते हैं जब प्रलयकाल वीत जाता है तब सृष्टिके आदिमें दो परमाणुओं केसंयोग से द्व्यणुक और

(हमारा शास्त्र युक्ति युक्त है वेदान्त शास्त्र युक्ति रहित है यह कथनहीं महामोह है) ॥

त्रिभिर्द्व्यणुकैस्त्र्यणुकमिति द्व्यणुकादि क्रमेण परमाणुभि र्जगदारभ्यत इति प्रलपन्ति । अत्रवदामः प्रलये विभक्तानां परमाणूनामन्यतरकर्मणोभयकर्मणा वा संयोगो वाच्यः । कर्मणश्च दृष्टं निमित्तं प्रयत्नादिकं वाच्यं यथा प्रयत्नवदात्म-संयोगाद्देहचेष्टा वाय्वाद्यभिघाताद्वृ-क्षचलनं तद्वत्परमाणु कर्मणोदृष्टन्निमि-

तीन द्व्यणुकोंके संयोगसे त्र्यणुक उत्पन्न होता है इस रीतिसे द्व्यणुकादि क्रमसे जगत् उत्पन्न होता है। इसमें हम यह कहते हैं कि प्रलय कालमें अलग २ हुए परमाणुओंका जो सृष्टिके आदिमें संयोग होता है वह एक परमाणु वा दो परमाणुओंकी क्रियासे उत्पन्न हुआ मानना होगा क्योंकि क्रिया के विना संयोग हो नहीं सकता है और उस क्रियाका कोई ऐसा कारण जैसा कि शरीर की क्रिया का प्रयत्नवदात्मसंयोग और वृक्षादिकों की क्रिया का पवनादिकों का संयोग कारण है,

त्तमभ्युपगम्यते वा नवा नान्त्यः परमा-
णुष्वाद्यक्रियारूपकार्यासम्भवात् ना-
द्यः प्रयत्नादेः सृष्ट्युत्तरकालीनत्वेना-
द्यक्रियाजनकत्वायोगात् । ननुदृष्टनि-
मित्तासम्भवेपि जीवादृष्टस्य निमित्तत्व-
सम्भवइति चेन्न असम्बद्धस्य तस्यनिमि-
त्तत्वायोगात् जडत्वेन प्रवर्त्तकत्वायो-
गाच्च ।

मानते हो वा नहीं यदि न मानों तो कारण के न होनेसे क्रियाकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी और यदि मानों तो सृष्टिसे प्रथम पवनादि उत्पन्न ही नहीं हुये तो वे परमाणु क्रियाके उत्पादक कैसे हो सकेंगे। शङ्का। यद्यपि सृष्टिके आरम्भ समयमें होनेवाली परमाणुक्रियाका कोई दृष्ट कारण नहीं बन सकता तथापि जीवोंके धर्म और अधर्म रूप अदृष्ट कारण हो सकते हैं। समाधान। परमाणुओंसे असम्बद्ध औ जड़ होने से अदृष्ट क्रियाके कारण नहीं हो सकते हैं।

ननु अदृष्टवदात्मसंयोगस्य निमित्तत्व-मितिचेन्न विभुसंयोगस्याणुषु सदा सत्वा-त्प्रलयाभाव प्रसङ्गः। ननु जीवाधिष्ठिता-दृष्टं निमित्तमितिचेन्न प्रलयकालेऽनुत्प-न्नचैतन्यस्य जीवस्य जडत्वेनाधिष्ठातृत्वा योगात् । ननु ईश्वरेच्छाया निमित्तत्व मितिचेन्न तस्यानित्यत्वेन कादाचित्क-प्रवर्तकत्वायोगात् । ननु ईश्वरेच्छायाः

शं० (अदृष्ट) वदात्माका संयोग कारण हो सकता है। स० ऐसा होने से विभु आत्माके संयोग को परमाणुओंसे सदा ही विद्यमान होनेसे पर माणु क्रियासे द्यणुकादि क्रमसे सदा ही सृष्टि होती रहेगी प्रलय कभी न हो सकेगा। शं० जीवसे अधिष्ठित अदृष्ट को कारण मानें गे। स० प्रलय कालमें ज्ञानादिकों के न उत्पन्न होने से जड़ जीव अदृष्टों का अधिष्ठाता नहीं हो सकता है। शं० ईश्वर की इच्छा कारण हो सकेगी स० उस को नित्य होने से कादाचित्क परमाणुक्रिया की

सृष्टिस्थिति प्रलय कालविषयकैकाकारतया कादाचित्कप्रवर्त्तकत्वसम्भव इति चेन्न । विकल्पासहत्वात् तथाहि यस्मिन्काले सृष्टीच्छा तस्मिन् काले प्रलयेच्छा वर्तते वा नवा नाद्यः सृष्ट्यभावप्रसङ्गात् नान्त्यः अनित्यत्वप्रसङ्गात् किञ्च त्वदभिमतैतादृशेच्छासत्वे प्रमाणाभावात्

कारणता नहीं हो सकती है । श० नियत काल में होने वाले सृष्टि स्थिति और प्रलयको विषय करने वाली ईश्वरेच्छाको एकाकार होने से कादाचित्क परमाणुक्रियाकी कारणता हो सकती है । स० यह कथन विकल्पों को नहीं सहन कर सकता तथाहि जिस काल में ईश्वर को सृष्टि की इच्छा है उस काल में प्रलय की इच्छा है वा नहीं है यदि कहो है तो सृष्टि न होनी चाहिये और यदि कहो नहीं है तो प्रलय की कारण ईश्वरेच्छा की प्रलय से पूर्वकाल में उत्पत्ति माननी होगी इससे उसको अनित्यत्व प्रसङ्ग होगा और

प्रत्युत यज्ज्ञानं तन्मनोजन्यं या इच्छा सामनोजन्या इतिव्याप्त्यनुगृहीतसोऽका- यतेत्यादिश्रुतिविरोधेन नित्यज्ञानेच्छा- द्यसिद्धेश्च। नन्वस्त्वीश्वरेच्छाया अनि- त्यत्वं तथाप्यणुकर्मनिमित्तत्वसम्भवा- दितिचेन्न अपसिद्धान्तापत्तेः अशरीरा- मनस्कत्वेन

तुम्हारी मानी हुई ऐसी इच्छा में कोई प्रमाण नहीं है प्रत्युत जो ज्ञान है वह मनोजन्य है और जो इच्छा है वह मनोजन्या है इस नियम से अनुगृहीत "सोऽकामयत" इत्यादि श्रुतिसे विरोध होने से नित्य ज्ञान और नित्य इच्छा- दिकों का असम्भव है । श० ईश्वरेच्छा को अनित्यही मान लेंगे तब तो वह परमाणु क्रिया का कारण हो सकेगी। स० ईश्वरेच्छा को अनित्य मानने से नैयायिक सिद्धान्त की हानि होगी क्योंकि नैयायिक लोग ईश्वरेच्छा को नित्यही मानते हैं अनित्य नहीं। और शरीर और मनके

जन्यज्ञानाद्यनुपपत्तेश्च। किञ्चईश्वरोस्तिनवेति संशयेन तदीयेच्छानिमित्तकपरमाणुप्रवृत्तेर्दूरनिरस्तत्वात् तथाहि ईश्वरो नास्तिप्रमाणाभावा द्वन्ध्यापुत्रवत्। ननु क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वाद् घटवदित्यनुमानं प्रमाणमितिचेन्न व्याप्तिज्ञानाभावेनानुमानाप्रवृत्तेः

न होने से ईश्वरके जन्य ज्ञानादि बन भी नहीं सकते हैं। और ईश्वरकी असिद्धि से जब तक ईश्वर है वा नहीं है यह संशय बना हुआ है तब तक ईश्वरेच्छा से परमाणु क्रिया का मानना असङ्गतहै तथाहि ईश्वर नहीं है प्रमाण के न होने से जैसे वन्ध्या पुत्र नहीं है। श० पृथिवी और अङ्कुरादि किसी कर्ता से उत्पन्न हुए हैं कार्य होनेसे जैसे घटादि हैं। इस अनुमानसे पृथिव्यादिकों का कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है क्योंकि कोई भी जीव इन पृथिव्यादिकों को उत्पन्न नहीं कर सकता है।

तथाहि यद्यप्यङ्कुरादौ जीवः कर्त्ता न भवति तथापि जीवाद्भिन्नस्य घटवदचेतनत्वनियमादन्यः कर्त्ता नास्त्येवेतिव्यतिरेकनिश्चयात् यत्कार्यं तत्सकर्तृकमिति-व्याप्तिज्ञानासिद्धाऽनुमानाप्रवृत्तिः । किञ्च घटादौ व्याप्तिग्रहणकाले तदुत्पत्तिस्थानात्परितो वर्तमान तृणाङ्कुरादौ

स० यह बात आपकी सत्य है कि इन पृथिव्यादिकों का कर्त्ता जीव नहीं हो सकता परन्तु जिसका कर्ता जीव न हो उसका कोई भी कर्ता नहीं हो सकता है क्योंकि हम देखते हैं कि जीवसे भिन्न जो है सो सब जड़ है और कर्ता वही होता है जिसमें ज्ञान इच्छा और यत्न हों और वे चेतनके धर्म हैं जड़के नहीं इससे यह नियम नहीं बन सकता है कि जो कार्य होता है वह किसी कर्तासे उत्पन्न हुआ होता है जब यह नियमही न वनसका तब तन्मूलक तुम्हारा अनुमान कैसे बनेगा

तत्कर्तुरप्रत्यक्षत्वेन तार्किकाणां बुद्धिमतां बुद्धौ कथं व्यभिचारबुद्धि नौत्पन्नेति महदाश्चर्यं यदि क्वचित्स्थले व्याप्तिंगृहीत्वा सर्वत्राऽनुमीयते तर्हि क्षित्यङ्कुरादिकं दण्डचक्रादिव्यापारजन्यं कार्यत्वाद् घटवदित्याद्यनुमितेर्दुर्निवारत्वं स्यात्। किञ्च सुखसमवायिकारणस्यात्मनः

और यह एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि घटादिकोंमें उक्त नियमके देखनेके समयमें समीपस्थ तृण और अंकुरादिकों के कर्ताके नदीखनेसे भी बुद्धिमान् तार्किकों को उक्त नियममें व्यभिचार बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है। और यदि किसी एकमें नियमको देखकर तदनुसार ही सर्वत्र अनुमान करोगे तो पृथिव्यादि दण्ड और चक्रादिकोंके व्यापारसे उत्पन्न हुए कार्य के होनेसे जैसा घट है ऐसे अनुमानोंसे भी साध्यकी सिद्धिका प्रसङ्ग होगा ॥

और सुखका समवायि कारण जीवात्मा

सुखादिकर्तृत्वाऽसम्भवेन कर्तृजन्यत्वाऽभाववति सुखादौकार्यत्त्वहेतोर्विद्यमानत्वेन व्यभिचारात् अन्यथाऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वस्वीकारापत्तेः नचेष्टापत्तिरपसिद्धान्तापातात् नहीदमीश्वरकर्तृकं तस्याऽसिद्धत्वेनाऽन्योन्याश्रयतापत्तेः ।

सुख का कर्ता नहीं हो सकता है इससे कर्तृजन्यत्वाभावाश्रय सुखमें कार्यत्व हेतुके विद्यमान होनेसे पूर्वोक्ताऽनुमानमें व्यभिचार है और यदि सुखादिकोंका कर्त्ताभी जीवात्माको मानोंगे तो उपादान और निमित्त कारणकी एकता होजायगी यदि इसको मान लोगे तो तुम्हारा उपादान और निमित्त कारणका भेद रूप सिद्धान्त खण्डित होजायगा और यदि ईश्वरको कर्त्ता कहोगे तो उसके असिद्ध होनेसे अन्योन्याश्रय दोष होगा क्योंकि ईश्वरसिद्धिके अधीन सुख में सकर्तृकत्वकी सिद्धि है और इसके अधीन ईश्वरकी सिद्धि है ॥

(नवीन आर्य्यमत प्रसिद्धेश्वर खण्डनम्)
अत्रकेचिच्छास्त्रसंस्कारशून्या आधुनिका दयानन्दिनः प्रजल्पन्ति घटादिकार्येजीवः कर्ता दृष्टः वृक्षाऽभिघातपर्वत शिखरपतनादौ वाय्वादीनां कर्तृत्वं दृष्टं तद्वत्सकलप्रपञ्चकर्तेश्वरो भवितुमर्हतीति। तत्तुच्छम् जडस्य कर्तृत्वाभ्युपगमे लाघवात् मूलप्रकृतेरेव कर्तृत्वाभ्युपगमेन।

(दयानन्दमतसिद्धईश्वरका खंडन) इसमें आधुनिक और शास्त्र संस्कार रहित कई एक दयानन्दी लोग कहतेहैं कि जैसे घटादि कार्योंमें जीव और वृक्षोंके टक्करने और पर्वतशिखरोंके पतन आदिमें पवनादि कर्ता देखे हैं वैसा सकल प्रपञ्चका कर्त्ता ईश्वर होना चाहिये यह उनका कनथ तुच्छहै क्योंकि यदि पवनादि जड़ पदार्थ भी कर्ता हो सकें तो लाघव से मूलप्रकृतिको ही सकल प्रपञ्च का कर्ता मानलेना।

वन्ध्यापुत्र तुल्येश्वराभ्युपगमस्य वैयर्थ्यापत्तेः। किञ्च ईश्वरः सच्चिदानन्दरूपो निराकारः सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयालुः अजन्मा अनन्तोनिर्विकारोऽनादिरनुपमः सर्वाधारस्सर्वेश्वरस्सर्वव्यापकः सर्वान्तर्याम्यजरोऽमरोऽभयोनित्यःपवित्रः सृष्टिकर्ताचेति प्रलपन्ति तदपेशलम् अत्रवहूनि व्यर्थविशेषणानिसन्ति तेषां स्तुत्यर्थत्वेनोपपत्तावपि ।

वन्ध्यापुत्र के सदृश ईश्वर की कल्पना करनी व्यर्थ है।और जो यह कहा है कि ईश्वर सच्चिदानन्दरूप निराकार सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयालु अजन्मा अनन्त निर्विकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वेश्वर सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी अजर अमर अभय नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है वह भी समीचीन नहीं है क्योंकि इस में बहुत से विशेषण व्यर्थ हैं और यदि स्तुति के अर्थ होनेसे उनकों सार्थक भी मानलेवें तो भी

सच्चिदानन्दरूपत्वनिर्विकारत्वसर्वशक्तिमत्वन्यायकारित्वदयालुत्वनिराकारत्वस्रष्टृत्वैकत्वविशिष्टेश्वरव्यक्तेः शशविषाणकल्पत्वात् तथाहि ईश्वरस्य सच्चिदानन्दरूपत्वेनैव साकारत्वसिद्धौ निराकारत्व विशेषणाऽसम्भवः किञ्च निराकारस्य स्रष्टृत्वं सर्वशक्तिमत्वं न्यायकारित्वं दयालुत्व ञ्चाऽत्यन्तमसङ्गतम् निराकारे वन्ध्यापुत्रेऽप्येतादृश

सच्चिदानन्दरूपत्व निर्विकारत्व सर्व शक्तिमत्व न्यायकारित्व दयालुत्व निराकारत्व स्रष्टृत्व और एकत्व विशिष्ट ईश्वर व्यक्ति शशशृङ्गके तुल्य है । तथाहि सच्चिदानन्दरूप होनेसेही ईश्वर की साकारता सिद्ध हो गई इससे निराकारत्व विशेषणका असम्भव है । और निराकार में स्रष्टृत्व सर्वशक्तिमत्व न्यायकारित्व और दयालुत्व कथन अत्यन्त असङ्गत है जैसे निराकार वन्ध्यापुत्रमें भी उन्मत्त लोग ऐसे धर्मों की

विशेषणस्योन्मत्तैः उत्प्रेक्षितुं शक्यत्वात् किञ्च यत्र शत्रुमित्रपुत्रादीनां शिक्षा-रक्षारूपं न्यायकारित्वं तत्र परदुःखप्रहाणेच्छारूपदयालुत्वा ऽसम्भवात् प्राणमनश्शरीर शून्यस्यैतादृशधर्मवत्वं मन्दवुद्धीनां वञ्चनायैव प्रजल्पितं नास्तिकशिरोमणिना दयानन्देनेति वुद्धिमता वोद्धव्यम् ।

कल्पना कर सकते हैं परन्तु वह अत्यन्त असङ्गत होती है। और जिसमें शत्रु मित्र और पुत्रादिकों की शिक्षा और रक्षादिरूप न्याय कारित्व है उसमें दूसरोंके दुःखके नाशकी इच्छा रूप दयालुत्वका असम्भव है क्योंकि विना किसीको दुःख दिए उक्त रूपका न्याय वन नहीं सकता है इस से वुद्धिमानों को यह जानना चाहिए कि नास्तिक शिरोमणि दयानन्दका जो प्राण मन और शरीरसे रहितमें ऐसे धर्मों का कथन है वह मन्दवुद्धि लोगों के वञ्चनार्थही है।

किञ्च एतेधर्माः निराकारे सच्चिदान-न्दरूपे सत्यांशेवर्त्तन्ते उत चिदंशे आ-होस्विदानन्दांशे अथवा अंशत्रयेपि । नाद्यः घटःसन्नित्यत्र सत्यांशे न्यायका-रित्वादि धर्माणामदर्शनेन दृष्टविरुद्ध कल्पनस्योन्मत्तप्रलापकल्पत्वात् सत्यत्व-स्यापि वस्तुधर्मत्वेन प्रतीयमानत्वात् धर्मेधर्माऽभावादिति न्यायविरोधेन तत्र तत्कल्पनायोगाच्च

और उक्त धर्म निराकार सच्चिदानन्द रूपके सत्यांशमें रहते हैं वा चिदंश में अथवा आनन्दांश में वा तीनों अशों में ? प्रथम पक्ष तो इससे नहीं बन सकता है कि घट सत् है इस प्रतीतिमें भासमान सत्यांशमें न्यायकारित्वादि धर्म दृष्ट नहीं होते हैं और दृष्टविरुद्ध कल्पना उन्मत्तप्रलापके तुल्य होती है और सत्यत्व भी वस्तु धर्मरूपसे प्रतीत होता है इससे धर्ममें धर्म नहीं रहता है इस न्याय के साथ विरोध होने से

नद्वितीयतृतीयौ घटोऽयमितिज्ञाने भोगानन्दादौच न्यायकारित्वादीनामदर्शनेनोक्तदोषतुल्यत्वात् नचचतुर्थः अंशत्रयवतः सच्चिदानन्दस्वरूपिणो धर्मिणोऽप्रसिद्ध्या तद्धर्मस्याप्यप्रसिद्धेः। नन्वहमस्मिज्ञाताऽनन्दवानित्यादिना प्रतीयमाने वस्तुनि न्यायकारित्वादयोधर्माः प्रतीयन्त इति चेत् ।

तिसमें उक्त धर्मों की कल्पना वन भी नहीं सकती है और यह घट है इस ज्ञानमें वैषयिक आनन्द में कथित धर्मोंके न देखने से द्वितीय और तृतीय पक्ष भी नहीं वन सकता है और तीन अंशों वाले सच्चिदानन्दरूप धर्मीको अप्रसिद्ध होनेसे उसके धर्म भी प्रसिद्ध नहीं होसकते हैं इससे चतुर्थ पक्ष भी अनुपपन्न है। श० मै हूं ज्ञान और आनन्द वाला इस रीति प्रतीयमान तीन अंशों वाले धर्मीमें न्यायकारित्वादि धर्म प्रतीत होते हैं।

सत्यम्प्रतीयन्ते सत्यज्ञानानन्दविशिष्टे जीवे नतु सच्चिदानन्दरूपे तदभावस्य प्रदर्शितत्वात् । ननु जीवः सच्चिदानन्दरूपः कालत्रयानुसन्धायित्वेन सद्रूपत्वस्य ईश्वरादि सकलपदार्थसद्भावाऽसद्भावसाक्षित्वेन चिद्रूपत्वस्य वाह्यपुत्राद्यपेक्षया स्वात्मनोनिरतिशयप्रेमास्पदत्वेनानन्दरूपत्वस्यात्मन्यनुभूयमानत्वात् ।

स० प्रतीत तो सत्य होते हैं परन्तु सत्य ज्ञान और आनन्द विशिष्ट जीव में प्रतीत होते हैं सच्चिदानन्दरूप में नहीं उसमें उनका अभाव दिखा चुके हैं। श० जीव सच्चिदानन्दरूप है क्योंकि तीनों कालों के स्मरणका कर्ता होने से सद्रूप है ईश्वरादि सकल पदार्थों के होने न होने का साक्षी होनेसे चिद्रूप और वाह्य पुत्रादिकोंकी अपेक्षा से निरतिशय प्रेमका आश्रय होनेसे आनन्दरूपहै ।

जीवः कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखीत्यादिधर्माणां सुषुप्तौ व्यभिचारेण यस्य यो धर्मः स तन्न व्यभिचरतीतिन्यायविरोधेन तेषां जीवधर्मत्वकल्पनायोगात् दीपप्रकाशवद् गुडमाधुर्य्यवच्च तेषां सर्वदाऽननुभूयमानत्वात् लोहितःस्फटिक इतिवदौपाधिकत्वकल्पनोपपत्तेश्च तथाच

और जो जीव कर्ता भोक्ता सुखी और दुःखी है इत्यादि व्यवहारसे जीवमें कर्तृत्वादि धर्म प्रतीत होते हैं उनको सुषुप्तिमें व्यभिचारी होनेसे जो जिसका धर्म होताहै वह उससे व्यभिचारी नहीं होताहै इस न्यायके साथ विरोध होनेसे जीव धर्मत्वकल्पना असङ्गतहै और दीपकके प्रकाश और गुड़के माधुर्य्यके सदृश सदा प्रतीत न होनेसे स्फटिकमें लौहित्यके तुल्य औपाधिकत्व कल्पना ही समीचीन है इतने कथनसे यह सिद्ध हुआ कि सच्चिदानन्दरूपजीवमें न्याय कारित्वादि धर्म बन सकतेहैं

जीवे सच्चिदानन्दरूपे न्यायकारित्वाद-
योधर्माः सङ्गच्छेरन्निति चेन्न। कर्तृत्वादि-
वन्न्यायकारित्वादिधर्माणामपिकल्पित-
त्वोपपत्त्या दृष्टविरुद्धसत्यधर्मकल्पन-
स्योन्मत्तप्रलापत्वं दुर्वारमित्यलमतिप्रप-
ञ्चेन प्रासङ्गिकेन। एवञ्च दृष्टान्तबलेना-
पि तादृशेश्वरो न सिध्यतीतिबोध्यम् ए-
तेन सर्वसत्यविद्याया ईश्वरमूलत्वमपि-
निरस्तमितिमन्तव्यम् ॥

और सच्चिदानन्दरूप में उक्त धर्मोंके अभावका
कथन असङ्गतहै स० जिस रीतिसे कर्तृत्वादि
धर्मोंको औपाधिकत्व मानाहै उसी रीतिसे न्याय-
कारित्वादि धर्म भी औपाधिक होसकते हैं फिर
उनको जीवधर्म कहना दृष्ट विरुद्ध होनेसे उन्मत्त
प्रलापके सदृश है अब इस प्रासङ्गिक विचार को
यहां हीं समाप्त कर्तेहैं इस कथनसे यह सिद्ध
हुआ कि दृष्टान्त बलसे भी उक्त रीतिका ईश्वर
सिद्ध नहीं होसकताहै और इतने कथनसे सकल

स्यादेतत् अशरीरस्य विभोः जन्यज्ञानायोगात् यज्ज्ञानं तन्मनोजन्यमिति व्याप्तिविरोधेन नित्यज्ञानाऽसिद्धेः ज्ञानशून्यस्य कर्तृत्वायोगेनेश्वरासिद्धेश्च किञ्च अनुमानस्य दृष्टानुसारित्वेन विपरीतकल्पनायोगात् यादृशाः कर्तारोलोके दृष्टास्तादृशाएव जगत्कर्तारो रागद्वेषादिमन्तः सिद्ध्येयुः

सत्य विद्या ईश्वर मूलक है इस कथनका भी खण्डन हुआ जानना॥ और शरीर रहित विभु में जन्यज्ञान हो नहीं सकताहै और जो ज्ञान है वह मनोजन्य है इस नियमके साथ विरोध होनेसे नित्यज्ञान भी नहीं वन सकताहै और ज्ञान शून्य कर्ता भी नहीं हो सकताहै इससे ईश्वर सिद्ध नहीं होसकताहै और अनुमानको दृष्टानुसारी होनेसे दृष्ट विपरीतका वह साधक नहीं होसकता है इससे अनुमानसे भी जैसे रागद्वेषादियुक्त कर्ता लोकमें देखनेमें आतेहैं

यदि लोके विचित्रप्रासादादिकर्तुरेक-
त्वाद्यदर्शनेऽपि जगत्कर्तुर्लाघवादेकत्वं
नित्यज्ञानं निर्दोषत्वादिकंच कल्प्यते
तर्हि ततोऽप्यतिलाघवेन मूलप्रकृतेरेव
दृष्टविरुद्धं सर्वं कल्प्यतां किं गुरुतरदृष्टवि-
परीतकल्पनयाऽसदीश्वरधर्मिकल्पनेन।
किञ्च विचित्रप्रपञ्चस्य प्रासादादिवदेक-
कर्तृकतावाधान्नलाघवावतारः ।

वैसेही जगत्के अनेक कर्ता सिद्ध होवेंगे और
यदि कहो कि यद्यपि विचित्र गृहादिकोंका एक
कर्ता नहीं देखनेमें आया है तथापि लाघवसे
जगत्का कर्ता एक नित्यज्ञानयुक्त और निर्दोष
कल्पना करेंगे तो हम कहते हैं कि इससेभी
अति लाघव होनेसे मूलप्रकृतिमेंही दृष्टविरुद्ध
सकल धर्मों की कल्पना करलो अधिक दृष्टवि-
परीत कल्पना और असिद्ध ईश्वररूप धर्मोंकी
कल्पनासे क्या फलहै और जैसे एक विचित्र
गृह एकका वनाया हुआ नहीं होताहै ऐसेही

नच सर्वज्ञत्वात्कर्तुरेकत्वसम्भवः । एकत्वज्ञानात्सर्वज्ञत्वज्ञानं ततस्तदित्यन्योन्याश्रयतापत्तेः एतेन विमतं सेश्वरं कार्यत्वाद् राष्ट्रवत् । कर्मफलं सपरिकराभिज्ञदातृकं कालान्तरभाविफलत्वात्

यह संसार भी विचित्र होने से एकका बनाया हुआ नहीं होसकताहै इससे तुम्हारा लाघव अकिञ्चित्करहै क्योंकि लाघव भी उसी पदार्थकी कल्पनामें सहकारी होसकता है जो होसके । और यदि कहो कि सर्वज्ञ होनेसे संसारका कर्ता एक होसकता है तो अन्योन्याश्रय दोष होगा क्योंकि जबतक ईश्वरमें एकत्वज्ञान न हो तब तक सर्वज्ञत्व ज्ञान और जब तक सर्वज्ञत्व ज्ञान न हो तब तक एकत्व ज्ञान नहीं होसकताहै और यह जो ईश्वरसाधक अनुमान कहेजाते हैं कि संसार ईश्वरसे अधिष्ठित है कार्य होनेसे जैसा देश कार्य होनेसे राजादिरूप ईश्वरसे अधिष्ठित है । और कर्मोंका फल

सेवाफलवत् । ज्ञानैश्वर्याद्युत्कर्षः क्वचिद्विश्रान्तः सातिशयत्वात् परिमाणवदित्याद्यनुमानानि निरस्तानि परिमाणस्य क्वचिद्विश्रान्तत्वमपि न दृष्टं कालाऽऽकाशाद्यनेकेषु विश्रान्तिदर्शनात् दृष्टवदेवसशरीरत्वादिदोषप्रसङ्गाच्च ॥ *

(अथ रामानुजमतसिद्धेश्वर खंडनम्)*

समर्थ चेतनसे दियाजाता है कालान्तरमें होनेवाला फल होनेसे जैसा सेवाका फल है। और ज्ञानैश्वर्यादिकोंका उत्कर्ष किसीमें विश्रान्त है न्यूनाधिकतावाला होनेसे जैसा परिमाण है। इनका खण्डन भी उक्त युक्तियोंसे जानलेना। और परिमाण किसी एकमें विश्रान्त भी नहीं है क्योंकि काल और आकाशादि अनेकोंमें विश्रान्त देखने में आता है। और दृष्टान्तोंसे ईश्वरकी सिद्धि करनेसे उनहीसे उसमें सशरीरत्वादि दोषोंका प्रसङ्ग होगा।

(अब रामानुज मत सिद्ध ईश्वरका खण्डन)

अत्रकेचिद्वैष्णवादयः सशरीरत्व ना-
नात्वरूपवत्वादिकमभ्युपगच्छन्ति तद-
सङ्गतम् अनित्यत्वाऽसर्वज्ञत्वादिदोषस्य
दुर्निवारत्वात् ननुतच्छरीरस्याऽप्राकृत-
त्वान्नतस्याऽनित्यत्वादिकं सम्भावयितुम्
शक्यमितिचेन्न विकल्पाऽसहत्वात् तथा-
हि किन्नामाऽप्राकृतत्वं प्रकृतिविकार-
भिन्नत्वम् उत प्रकृतिभिन्नत्वं वा नाद्यः

और जो कोई वैष्णवादि लोग ईश्वरको सश-
रीर नाना और रूपादिविशिष्ट मानते हैं वह
असङ्गत है क्योंकि ऐसा होनेसे ईश्वरमें अनित्यत्व
और असर्वज्ञत्वादि दोषोंका वारण नहीं होस-
केगा । श० ईश्वरके शरीरको अप्राकृत होनेसे
ज्ञ क दोष नहीं होसकते हैं। स० यह कथन
ताहै
ते हैं पों को नहीं सहन करसकता है तथाहि
होनेसे त किसको कहतेहो प्रकृतिके विकारसे
ईश्वरसे कहतेहो वा प्रकृतिसे भिन्नको प्रथम
नता नहीं

विकारभिन्नायाः प्रकृतेः शङ्खचक्राद्यायुधविशिष्टहस्तपादादि विकाररूपशरीरत्वाऽनुपपत्तेः शरीराणां भौतिकत्वनिश्चयात् प्रकृतिविकारशून्यशरीरस्य वन्ध्यापुत्रशरीरवदऽप्रसिद्धत्वाच्च । नान्त्यः प्रकृतिभिन्नस्य चेतनस्य हस्तपादादिविशिष्टशरीररूपेण परिणतत्वादऽनित्यत्वस्य दुर्निवारत्वेन शून्यवादप्रसङ्गात्

क्योंकि विकारसे भिन्न प्रकृतिको शङ्ख और चक्रादिरूप शस्त्रयुक्त हस्त और पादादि विकारात्मक शरीर रूपता नहीं बन सकती है और सबशरीर भूतोंके ही कार्य देखनेमें आतेहैं इससे प्रकृतिके विकारोंसे भिन्न शरीर वन्ध्यापुत्रके शरीरके सदृश अप्रसिद्ध है। और द्वितीय पक्षभी नहीं बनसकताहै क्योंकि प्रकृतिसे भिन्न चेतनको हस्तपादादिविशिष्ट शरीररूपसे परिणत होनेसे अनित्यत्वप्रसङ्ग होगा और चेतनको अनित्य होनेसे शून्यवादकी प्राप्ति होगी

शिष्यवर्गान्तःपातिना विजयराघवाचारिणा यत्प्रलपितमीश्वरस्य स्वाभाविकमैश्वर्य्यंनिर्विशेषत्वाभावादिकञ्चेति तन्निरस्तम् सतिकुड्येचित्रमितिन्यायात् । स्यादेतत् ईश्वरस्य चिद्रूपत्वं वा जडरूपत्वं वा नाद्यः विभोश्चिद्रूपस्य कर्त्तृत्वाऽयोगात् जीवे कर्त्तृत्वाद्यभावस्य दयानन्दमतपरीक्षायां पूर्वपक्षव्याजेन

शिष्य समुदायान्तर्गत विजयराघवाचारीने जो यह कहाहै कि ईश्वरका स्वाभाविक ऐश्वर्यहै और वह निर्विशेष नहीं है वहभी खण्डितहुआजानना क्योंकि भित्तिके होनेसे चित्र होते हैं इस न्यायसे जबतक ईश्वरही सिद्ध नहीं हुआ तब तक उसकेधर्म कैसे सिद्ध होसकेंगे और हम यह पूछतेहैं कि ईश्वरको आप चेतन मानते हो वा जड प्रथमपक्ष तो नहीं बन सकताहै क्योंकि विभु चेतन कर्ता नहीं होसकताहै ॥ और जीवमें कर्तृत्वादिकोंका अभाव दयानन्दमतपरीक्षामें

सूचितत्वाद् दृष्टान्तवलेनापि कर्तृत्वस्य साधयितुमशक्यत्वाच्च । याकृतिः सा शरीरजन्येति व्याप्तिविरोधेन नित्यकृत्याद्यऽभावनिश्चयाच्च तस्य कर्तृत्वाद्यऽसिद्धेः । न द्वितीयः जडस्य कर्तृत्वाद्यऽसम्भवात् ईश्वरत्वाऽयोगाच्च तथाचैतादृशदोषपरिहाराऽभावादीश्वराऽसिद्धिः ।

पूर्वपक्षके वहानेसे सूचन करआएहैं इससे दृष्टान्तवलसेभी ईश्वरको कर्तृत्वसिद्ध नहीं हो सकताहै और जो कृति होतीहै वह शरीर जन्य होतीहै इस नियमके साथ विरोध होनेसे ईश्वर कीकृति नित्य नहीं होसक्तीहै शरीरके न होनेसे ईश्वरमें अनित्य कृति भी नहीं होसकतीहै इससे वह कर्ता नहीं होसकताहै और जड़में कर्तृत्व और ईश्वरत्वके न वनसकनेसे द्वितीय पक्षभी नहीं वनसकताहै इससे यह सिद्धहुआ कि ऐसे दोषोंके परिहार नहोनेसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं होसकतीहै ।

नन्वीश्वराऽस्तित्वे आगमाः प्रमाणमितिचेन्न तेषां निर्मूलत्वेनाऽप्रामाणिकत्वात् नचईश्वरोक्तत्वात्प्रामाण्यमितिवाच्यम् प्रामाण्यसिद्धावीश्वरसिद्धिरीश्वरसिद्धौ प्रामाण्यसिद्धिरित्यन्योन्याऽऽश्रयतापत्तेः तस्मान्नियतस्य कस्यचित्कर्मनिमित्तस्याऽभावान्नाणुष्वाद्यंकर्म स्यात्

श० ईश्वरके होने में वेद प्रमाण हैं। स० वेदोंके वनानेवाला कोई नहोनेसे वे प्रमाण नहीं होसकतेहैं क्योंकि शब्द वही प्रमाण होसकताहै जो किसी यथार्थ वक्ताका कहा हुआ हो श० ईश्वरोक्त होनेसे वेद प्रमाणहैं। स० ऐसे कहोगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा क्योंकि वेदमें प्रामाण्य सिद्ध होले तो ईश्वरकी सिद्धि और ईश्वरकी सिद्धि होले तो वेदमें प्रामाण्यकीसिद्धि होसके इतने कथनसे यह सिद्ध हुआ कि किसी कारणके नियत न होसकनेसे परमाणुओंमें आद्यक्रिया नहीं होसकतीहै ॥

कर्माभावे नतन्निबन्धनः परमाणुद्वयसं-
योगः तदभावे द्वयणुककार्योऽनुत्पत्तिः त-
स्मादसङ्गतः परमाणुकारणवादः किञ्च
अणोरणवन्तरेणासंयोगः सर्वात्मना वा
स्यादेकदेशेन वा नाद्यःसंयोगस्य व्याप्यवृ-
त्तित्वे एकस्मिन्नितरस्य सर्वात्मना संयुक्त-
त्वेनाऽन्तर्भावात् कार्यस्यपृथुत्वाऽयोगेन
सर्वकार्यं परमाणुमात्रंस्यात्

और उसके न होनेसे उससे होनेवाला परमाणु-
द्वय संयोगभी नहीं होसकेगा और जब वह न
हुआ तो द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसक-
तीहै इससे परमाणुकारणवाद असङ्गतहै। और
हम यह पूछते हैं कि एक परमाणु दूसरे परमाणु
के साथ सबअवयवोंसे संयुक्त होताहै वा एक
देशसे ? यदि प्रथम पक्ष मानो तो संयोगको सब
अंशोंसे सिद्धहुआ होनेसे एकका दूसरेमें अन्तर्भाव
होजानेसे कार्यमें अधिक परिमाण नहोसकेगा
इससे सब कार्योंको परमाणु रूपताका प्रसङ्ग होगा

संयोगस्याऽव्याप्यवृत्तित्वं दृष्टं तद्विपरीतमिथ्याकल्पनाप्रसङ्गश्च स्यात् नद्वितीयः परमाणूनामेकदेशाऽवच्छेदेन संयोगएकदेशाऽवच्छेदेन तदऽभावइतिसावयवत्वप्रसङ्गात् । ननु परमाणूनां कल्पिताः प्रदेशाः सन्तीतिचेन्न कल्पितस्यमिथ्यात्वेन कल्पितप्रदेशाजन्य संयोगस्याऽपिमिथ्यात्वं स्यात् नचेष्टापत्तिः

और संयोग एक देशके साथही देखनेमें आता है इससे दृष्टविरुद्ध होनेसे सब अवयवोंके साथ संयोगकी कल्पना मिथ्याहै और एकदेश में संयोग और दूसरे देशमें उसके अभावके माननेसे परमाणुओंको सावयवत्वप्रसङ्ग होगा इससे द्वितीय पक्षभी नहीं बनसकताहै । श० परमाणुओंके कल्पित अवयव मानलेंगे । स० कल्पितको मिथ्या होनेसे कल्पित अवयवोंसे उत्पन्नहुआ संयोगभी मिथ्याही होगा और संयोगको मिथ्या आप मान नहीं सकतेहो

संयोगस्यद्व्यणुकाऽसमवायिकारणस्य मि-
थ्यात्वेद्व्यणुककार्यानुत्पत्तिः उत्पन्नमपि-
कार्यम् मिथ्यास्यादित्यऽपसिद्धान्तापत्तेः
तथाच षट्पदार्थसप्तपदार्थबन्धमोक्षा-
दि नियमा लुप्येरन् सर्वस्य कल्पित-
त्वात् एतेनाऽत्ममनस्संयोगाऽसम्भवोपि
व्याख्यातः निष्प्रदेशत्वात् प्रदेशवतो-
रेवसंयोगदर्शनात् दृष्टविपरीत कल्पने

यदि मानो तो उससे द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति
नहीं होसकेगी और उत्पन्नहुआभी कार्य मिथ्याही
होगा इससे तुम्हारे सिद्धान्तकी हानि होगी
क्योंकि तुमलोग द्व्यणुकादिकों को मिथ्या नहीं
मानतेहो और सबको कल्पित होनेसे षट्पदार्थ
सप्तपदार्थ बन्ध और मोक्ष इन सबके नियम लुप्त
होजायँगे और उक्त युक्तिसे आत्मा और मनके
संयोग का असम्भव भी जानलेना क्योंकि दोनों
निरवयव हैं और संयोग सावयवोंका ही देखनेमें
आताहै और दृष्ट से विपरीतकी कल्पनामें

मानाभावाच्च किञ्च द्व्यणुकंनिरवयवाऽसमवेतं सावयवत्वात् आकाशाऽसमवेतभूमिवदित्यनुमानेन द्व्यणुकस्य समवेतत्वाऽसिद्धिः ननु द्व्यणुकस्याऽसमवेतत्वे तदाश्रितत्वं तस्मात् सम्बन्धंविनातदयोगात् न च संयोगादाश्रितत्वमितिवाच्यम् प्रकृतिविकारयोः संयोगाऽयोगात्।

कोई प्रमाण नहीं है और द्व्यणुक निरवयवमें समवेत नहीं है सावयव होनेसे जैसा आकाशमें असमवेत भूमि है इस अनुमानसे द्व्यणुक की परमाणुओंमें समवाय सम्बन्धसे विद्यमानताकी भी सिद्धि नहीं होती है। शं० यदि द्व्यणुक समवेत न हो तो परमाणुओंके आश्रित नहीं होसकेगा क्योंकि सम्बन्धके विना आश्रित नहीं होसकता है। कहना। संयोग सम्बन्धसे आश्रित होजायगा। समाधान। प्रकृति और विकारका संयोग नहीं होसकता है इससे कार्य और कारणका आश्रयाश्रयिभाव सम्बन्धके विना बन नहीं सकता है

तथाच कार्यकारणयोराश्रयाश्रयिभावा-
ऽन्यथानुपपत्या समवायसिद्धिस्तत्सिद्धौत
दाश्रितत्वसिद्धिरितिचेन्न कार्यकारणयो-
रभेदात्तदाश्रयाश्रयिभावाऽनुपपत्तेरिष्ट-
त्वात् नचतयोर्भेदात्तत्सिद्धिरितिवाच्यम्
भेदसिद्धावाश्रयाश्रयिभावसिद्धि स्तत्सि-
द्धौतत्सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयतापत्तेः अग्रे-
विस्तरेण तद्भेदस्य निराकरिष्यमाणत्वात्

इससे समवाय सिद्ध हुआ और उसके सिद्ध होनेसे द्व्यणुकका परमाणुओंमें समवेत सिद्ध हो गया। स० कार्य और कारण का अभेद होनेसे आश्रयाश्रयिभावका न बनना इष्टही है। श० कार्य और कारण का भेद होनेसे आश्रयाश्रयिभाव सिद्ध है। समाधान। ऐसे माननेसे अन्योन्याश्रय होगा क्योंकि भेद सिद्ध हो तो आश्रयाश्रयिभाव की सिद्धि और आश्रयाश्रयिभाव की सिद्धि हो तो भेदकी सिद्धि होसके और आगे कार्य और कारणके भेदका विस्तार से खण्डन करेंगे

कारणस्यैवावस्थाभेदमात्रेण व्यवहारो-
पपत्तेश्च तथाच द्व्यणुकरूपकार्योऽनुत्प-
त्तिः । किञ्च परमाणवः सावयवाः अ-
ल्पत्वाद् घटवत् नचाऽप्रयोजकता पर-
माणूनांदिग्विभागावधित्वं नस्यादात्मव-
दितिवाधकसत्वात् ननु परमाणवपेक्षया
योयं प्राचीदक्षिणेत्यादि दिग्भेदव्यवहा-
रः तदवधित्वेन येऽवयवास्त्वयोच्यन्ते

और कार्यको कारणका अवस्थाविशेष मान
लेनेसे व्यवहार वन सकताहै इससे भेद मानना
विफलहै इस युक्तिसे द्व्यणुकरूप कार्यकी उत्पत्ति
नहीं वन सकतीहै। और परमाणु सावयवहैं अल्प
होनेसे जैसा घट है। और परमाणु यदि सावयव
न हों तो आत्माके सदृश दिग्विभागके अवधि न
होसकेंगे इस तर्कके विद्यमान होनेसे उक्तानुमान
तर्क शून्य नहींहै।१०। परमाणुकी अपेक्षासे जो यह
पूर्व और दक्षिण इत्यादि दिग्भेद व्यवहारहैं।
उसमें अवधिरूपसे जिनको आप अवयव कहतेहो

तएव परमाणवस्तेपि सावयवाश्चेत्तद-
वयवाएवते इत्येवं यतः परन्नविभागः
सएव निरवयवः परमाणुरितिचेन्न आ-
त्मभिन्नस्याऽल्पस्य दिग्विभागाऽर्हत्वेनाऽ-
वयवविभागाऽवश्यम् भावात् यत्सर्वात्म-
ना विभागाऽयोग्यं वस्तु सः परमाणुरिति
यद्युच्येत तर्हि आत्मनएव परमाणुसंज्ञा-
कृतास्यात् तदन्यस्याऽल्पस्य दिग्विभागा-
ऽवधित्वेन सावयवत्वस्य दुर्निवारत्वात्

वेही परमाणु हैं और यदि उनको भी सावयव
मानों तो उनके अवयवही जिनसे आगे विभाग
नहीं होसकताहै परमाणु हैं। स०। आत्मासे भिन्न
सब अल्प वस्तुओं को दिग् विभागके योग्य होनेसे
अवयवोंका विभाग अवश्य होना चाहिए और
यदि कहो कि जिसमें किसी रीतिसे भी विभाग
न होसके वह वस्तु परमाणु है तबतो आपने
आत्माका ही नाम परमाणु रखलिया क्योंकि
आत्मासे भिन्न अल्प पदार्थोंको दिग्विभागके

यदि पृथिव्यादिजातीयाऽल्पपरिमाण-
विश्रान्ति भूमिर्यः सपरमाणुरित्युच्येत
तर्हि तस्य न मूलकारणत्वं विनाशित्वात्
घटवत् नच हेत्वऽसिद्धिः अणवो विना-
शिनः पृथिव्यादिजातीयत्वात् घटव-
दित्यनुमानसिद्धत्वात् तथाच निरवय-
वानां संयोगसमवाययोरसम्भवात्तत्स-
मवेत द्व्यणुककार्याद्यारम्भकत्वासिद्धिः*

अवधि होनेसे उनमेंसे सावयवत्व वारित नहीं
होसकता है और यदि कहो कि जो पृथिव्यादि
सजातीय और अल्प परिमाणका विश्राम स्थान
है वह परमाणु है तो वह मूलकारण नहीं होस-
कता है विनाशी होनेसे जैसा घटहै और इस
अनुमानमें हेतु की असिद्धि नहीं है क्योंकि पर-
माणु विनाशी हैं पृथिव्यादिकों के सजातीय होनेसे
जैसा घट है इस अनुमानसे हेतुकी सिद्धि होतीहै
और इससे यह सिद्ध हुआ कि निरवयवोंके सं-
योग और समवायके न होसकनेसे परमाणुओंको

किञ्च यदुक्तं संयुक्तानां परमाणूनां विभागात्प्रलय इति तदप्यसङ्गतम् युगपदनन्तपरमाणूनां विभागे नियतस्याऽभिघातादेर्दृष्टस्य निमित्तस्याऽसत्वाद्धर्माधर्मरूपाऽदृष्टस्य सुखदुःखार्थत्वेन सुखदुःखशून्यप्रलयहेतुकविभागाऽहेतुत्वाच्च किञ्च परमाणवः प्रवृत्तिस्वभावा वा? निवृत्तिस्वभावा वा? उभयस्वभावा वा?

स्वसमवेत द्व्यणुकरूप कार्यकी आरम्भकता नहीं हो सकती है। * और जो संयुक्त परमाणुओं के विभाग से प्रलय कहा है वह भी असङ्गत है क्योंकि एक ही कालमें अनन्त परमाणुओं के विभागका कोई नियत अभिघातादिरूप दृष्ट कारण नहीं है और धर्म और अधर्मरूप अदृष्टों को सुख और दुःख के अर्थ होने से सुख और दुःख से रहित प्रलय के कारण विभाग की हेतुता नहीं हो सकती है* और परमाणुओंको आप प्रवृत्ति स्वभाव वाले

निमित्ताऽधीनप्रवृत्तिनिवृत्तिस्वभावा वा? नाद्यः प्रलयाऽभावप्रसङ्गात् नद्वितीयः सर्गाऽभावप्रसङ्गात् नतृतीयः विरोधात् नचतुर्थः निमित्तानां कालाऽदृष्टादीनां वक्तव्यानांनित्यसन्निहितत्वेन नित्यमेव प्रवृत्ति र्वा निवृत्ति र्वा स्यादित्यप्यसङ्गतः परमाणुकारणवादः। किञ्च यदपिसावयवानांद्रव्याणामवयवशो विभज्यमानानां

मानतेहो वा निवृत्ति स्वभाववाले अथवा उभय स्वभाववाले वा निमित्तसे उभय स्वभाववाले? प्रलयाभाव प्रसङ्गसे प्रथमपक्ष सर्गाभाव प्रसङ्ग होनेसे द्वितीयपक्ष और विरोध होनेसे तृतीय-पक्ष नहीं बन सकता है चतुर्थपक्ष भी नहीं वन सकताहै क्योंकि काल और अदृष्टादिकोंको ही आप निमित्त कहेंगे उनको नित्यही विद्यमान होनेसे नित्यही प्रवृत्ति वा निवृत्तिका प्रसङ्ग होगा इससे भी परमाणु कारणवाद असङ्गतहै। और जो यह कल्पनाहै कि सावयव द्रव्योंके अवयवोंका

यतः परो विभागो न सम्भवति ते चतुर्विधा यथार्हं स्पर्शादिमन्तः परमाणवः चतुर्विधस्य भूतभौतिकस्याऽऽरम्भका नित्याश्चेति कल्पयन्ति तदप्यऽसमञ्जसम् परमाणवः समवायिकारणवन्तः कारणाऽपेक्षयास्थूला अनित्याश्चस्पर्शवत्वाद्रूपवत्वाद्रसवत्वाद्गन्धवत्वात् घटादिवदित्यनुमानबाधात् नन्वऽत्र परमाणुत्वं

विभाग होता हुआ जिनमें जाकर ठहर जाता है वेही स्पर्शादि अपने नियत गुणोंवाले चार प्रकार के परमाणु चार प्रकारके भूत भौतिक प्रपञ्च के कारण और नित्यहैं वह भी असमञ्जस है क्योंकि परमाणु समवायि कारणवाले कारणकी अपेक्षासे स्थूल और अनित्य हैं स्पर्शवाले रूप वाले रसवाले और गन्ध वाले होनेसे जैसे घटादि हैं इन अनुमानोंसे परमाणुओंमें कार्यत्वादि सिद्ध होतेहैं प्र० । परमाणुत्वरूप पक्षतावच्छेदकसे विरुद्ध होनेसे स्थूलत्वकी उक्तानुमानसे सिद्धि नहीं हो सकतीहै ।

निमित्ताऽधीनप्रवृत्तिनिवृत्तिस्वभावा वा? नाद्यः प्रलयाऽभावप्रसङ्गात् नद्वितीयः सर्गाऽभावप्रसङ्गात् नतृतीयः विरोधात् नचतुर्थः निमित्तानां कालाऽदृष्टादीनां वक्तव्यानांनित्यसन्निहितत्वेन नित्यमेव प्रवृत्ति र्वा निवृत्ति र्वा स्यादित्यप्यसङ्गतः परमाणुकारणवादः। किञ्च यदपिसावयवानांद्रव्याणामवयवशो विभज्यमानानां

मानतेहो वा निवृत्ति स्वभाववाले अथवा उभय स्वभाववाले वा निमित्तसे उभय स्वभाववाले? प्रलयाभाव प्रसङ्गसे प्रथमपक्ष सर्गाभाव प्रसङ्ग होनेसे द्वितीयपक्ष और विरोध होनेसे तृतीयपक्ष नहीं बन सकता है चतुर्थपक्ष भी नहीं बन सकताहै क्योंकि काल और अदृष्टादिकोंको ही आप निमित्त कहेंगे उनको नित्यही विद्यमान होनेसे नित्यही प्रवृत्ति वा निवृत्तिका प्रसङ्ग होगा इससे भी परमाणु कारणवाद असङ्गतहै। और जो यह कल्पनाहै कि सावयव द्रव्योंके अवयवोंका

नचाप्रयोजकता कारणशून्यस्य नित्यस्या-त्मवत्स्पर्शादिमत्वाऽयोगात् यदुक्तं पर-माणवो नित्याः भावत्वेसत्यकारणवत्वा-दात्मवत् प्रागभाववारणायसत्यन्तं वो-ध्यमिति तन्नोपपद्यते विशेष्याऽसिद्धेः सा-धितत्वात् यदप्युक्तं नित्यत्वप्रतिषेधः स-प्रतियोगिकः अभावत्वादितिनित्यत्वस्य-

और उक्तानुमान में अप्रयोजकता नहींहै क्योंकि जिसका कोई कारण नहीं होताहै वह स्पर्शादि विशिष्ट नहीं होसकता जैसा आत्माहै। और जो यह कहा है कि परमाणु नित्यहैं भाव और कारण रहित होनेसे जैसा आत्माहै प्रागभाव कारणरहितहै और नित्य नहीं है इससे उसमें व्यभिचारके वारणके अर्थ हेतुमें भावविशेषण कहाहै वह भी असङ्गतहै क्योंकि पूर्व अनुमान से परमाणुओंको कारण सहित सिद्ध कर आएहैं इससे तुम्हारा अनुमान विशेष्याऽसिद्धहै। और जो यह कहाहै कि नित्यत्व का प्रतिषेध सप्रतियोगिक है अभाव होनेसे

क्वचित्सिद्धौ कार्य्यमनित्यमिति विशे-
षतः कार्ये नित्यत्वप्रतिषेधात् कारणभू-
तपरमाणुषु नित्यत्वंसिद्ध्यति अन्यथा-
प्रतियोग्यभावे प्रतिषेधानुपपत्तिरिति त-
दप्यसङ्गतम् नित्यत्वप्रतिषेधप्रतियोगि-
नो नित्यत्वस्याऽऽत्मनि सिद्धत्वेनाऽन्यथा-
सिद्धेः नह्यऽनित्यत्वप्रतियोगिनो नित्य-
त्वस्य परमाणुष्वेव पर्यवसानं नान्यत्रेति

इस अनुमानसे कहीं सिद्ध होता हुआ नित्यत्व कार्य अनित्य है इस रीति से कार्य में नित्यत्व के निषेधके होनेसे कारण रूप परमाणुओंमें सिद्ध होताहै क्योंकि यदि कहीं नित्यत्व सिद्ध न हो तो उसका निषेध न बन सकेगा वहभी असमञ्जस है क्योंकि नित्यत्वके निषेधके प्रतियोगि नित्यत्व को आत्मामें सिद्ध होनेसे परमाणुओंमें नित्यत्वके न होनेसे भी उक्तानुमान बन सकताहै और इसमें कोई प्रमाण नहींहै कि अनित्यत्वका प्रति-योगि नित्यत्व परमाणुओंमें ही होवे औरमें नहीं

किञ्चिन्नित्यात्मकमस्ति नहि कारणनित्यत्वस्य प्रमाणान्तरेणाज्ञानंविना कार्यमनित्यमिति व्यवहारः सम्भवति नहि प्रमाणान्तरेण मूलज्ञानात्प्राक् शब्दार्थ व्यवहारमात्रेण कस्यचिदर्थस्य सिद्धिर्भवति अन्यथा वटयक्षवन्ध्यापुत्रादि शब्दार्थ व्यवहारेणाऽपि तेषांसिद्धिःस्यात् ननुपरमाणवोनित्या अप्रत्यक्षत्वेसति कारणत्वादात्मवदितिचेन्न द्व्यणुकेव्यभिचारात्

और जवतक किसी प्रमाण से कारणमें नित्यत्व नहीं ज्ञात होताहै तवतक कार्य अनित्यहै ऐसा व्यवहार नहीं हो सकताहै क्योंकि जवतक किसी प्रमाणसे मूल न जाना जावे तवतक केवल बोल चाल सेहीं किसी पदार्थ की सिद्धि नहीं हो सकतीहै यदि ऐसा न मानो तो वटयक्ष अर्थात् वटवृक्षमें भूत और वन्ध्यापुत्र की भी सिद्धि हो जाएगी। शं०। परमाणु नित्यहैं अप्रत्यक्ष और कारण होनेसे जैसा आत्मा है।स०। यह अनुमान द्व्यणुकमें व्यभिचारीहै

नचारम्भकद्रव्यशून्यत्वं हेतुविशेषणमि-
तिवाच्यम् विशेष्यवैयर्थ्यापत्तेः विशेषणा-
ऽसिद्धेः प्रदर्शितत्वाच्च ननु परमाणवो
नित्याः नाशकाभावादात्मवदितिचेन्न प्र-
लयकारणभूतकालाऽदृष्टादीनां नाशक-
त्वोपपत्तेः "नासीद्रजो नव्योमेति" श्रुत्या

क्योंकि द्व्यणुक अप्रत्यक्ष और त्र्यणुकका कारण
है परन्तु नित्य नहींहै। श० हेतुमें आरम्भक द्रव्य
शून्यत्व विशेषण और देदेंगे वह द्व्यणुकमें नहीं
है क्योंकि द्व्यणुकके आरम्भक द्रव्य परमाणुहैं
इससे उसमें व्यभिचार नहीं है। स० आरम्भक
द्रव्य शून्यत्व मात्रकोही हेतु करनेसे कहीं व्यभि-
चारादिकोंके न होनेसे विशेष्य भाग व्यर्थ होगा
और परमाणु आरम्भक द्रव्य शून्य नहीं है यह
पूर्व हम सिद्ध कर चुके हैं। श० परमाणु नित्यहैं
नाशकके न होनेसे जैसा आत्मा है। स० प्रलय
के कारण काल और अदृष्टादिकों को नाशक हो
सकनेसे परमाणुओंके नाशकका अभाव नहीं है

प्रलये तदभावनिश्चयाच्च । सिद्धान्ते परमाणूनामविद्यापरिणामरूपत्वात्पिण्डस्वरूपतिरोभावेनाऽविद्यारूपकारणारूपापत्तिरेव तेषांनाशइत्यभ्युपगमाच्च । स्यादेतत् यद्यस्मादधिकगुणवत्तत्स्मात्स्थूलमिति व्याप्तिसिद्धं पृथिव्यप्तेजो वायुषु गुणोपचयापचयवत्त्वं स्थूलसूक्ष्मसूक्ष्मतरसूक्ष्मतमत्वं च दृष्टं

और वेदमें भी लिखाहै कि परमाणु और आकाश नहीं था। और हमारे सिद्धान्त में परमाणुओं को अविद्या का परिणामरूप होनेसे पिण्डस्वरूपका तिरोभाव होकर कारणीभूत अविद्यारूप होना ही उनका नाश है और जो जिससे अधिक गुण वाला होता है वह उससे स्थूल होताहैं इस नियमसे सिद्ध हुआ कि पृथिवी जल तेज और वायुमें गुणोंका न्यूनाधिकभाव औरस्थूल सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतमत्व देखनेमें आयाहै ऐसे ही इनके परमाणुओं में भी गुणोंका न्यूनाधिक भाव मानते हो वा नहीं

तद्वत्तेषां परमाणूनामप्युपचितापचित गुणवत्त्वंकल्प्यते वा नवा आद्ये पर-माणुत्वाऽभावप्रसङ्गः तथाहि पार्थिवः परमाणुराप्यात्स्थूलःअधिकगुणवत्वात् घटवत् नचाऽप्रयोजकत्वं दृष्टविरुद्ध-कल्पनस्य बाधकत्वात् द्वितीयेतु स-र्वेषां परमाणूनां साम्यार्थमेकैकगुणवत्वं वा स्यात् ? चतुर्गुणवत्वं वा ? आद्ये

यदि मानों तो अधिक गुणों वाले परमाणु नहीं होसकेंगे तथाहि पार्थिव परमाणु जलके परमाणुसे स्थूलहै अधिक गुण विशिष्ट होनेसे जैसा घटहै और यदि पार्थिव परमाणुको जलीय परमाणुसे स्थूल न मानोंगे तो दृष्ट विरुद्ध कल्पना प्रसङ्ग होगा इस विपक्ष बाधकके विद्यमान होनेसे उक्तानुमान अप्रयोजक नहीं है और द्वितीय पक्षमें हम यह पूछते हैं कि सब परमाणुओंमें तुल्यताके अर्थ एक २ गुण मानते हो अथवा चार २ यदि प्रथमपक्ष मानो तो

तेजः प्रभृतिषु गुणान्तरानुपलम्भप्रसङ्गः स्यात् द्वितीये वाय्वादिष्वऽपि गन्धाद्यु-पलब्धिप्रसङ्गस्यात् तस्मादसङ्गतैषाप्र-क्रिया * स्यादेतत् यदुक्तं कारणगु-णाः कार्यें स्वसमानजातीयगुणारम्भ-का इति तन्न परमाणुपरिमाणेव्यभि-चारात् ननु पारिमाण्डल्यभिन्नानां-कारणत्व मित्यभ्युपगमान्नदोषइतिचेन्न

तेज आदिकों में अधिक गुणों की प्रतीतिके अभावका प्रसङ्ग होगा और द्वितीय पक्षमें वा-य्वादिकों में भी गन्धादिकों की प्रतीतिका प्रसङ्ग होगा इससे यह मत असङ्गतहै * और जो यह नियम कहाहै कि कारणके गुण कार्य में स्व-सजातीय गुणोंको उत्पन्न करतेहैं वह परमाणु के परिमाणोंको परमाणु के कार्य द्व्यणुकमें स्व-सजातीय गुण को न उत्पन्न करनेसे व्यभिचारी है। श० । परमाणुके परिमाणसे भिन्नको ही कारण मानतेहैं इससे व्यभिचार नहीं है।

द्व्यणुकगताणुत्वह्रस्वत्वे व्यभिचारात्
ननु विरोधीपरिमाणाऽन्तराक्रान्तत्वाद-
णुत्वह्रस्वत्वयोर्नारम्भकत्वमितिचेन्न उ-
त्पन्नंहि परिमाणाऽन्तरं विरोधि भवति
उत्पत्तेःप्राग्विरोधाभावेनाऽऽरम्भकत्वस-
म्भवात् ननु विरोधिपरिमाणेनसहकार्य-

स० । द्व्यणुकके अणुत्व और ह्रस्वत्व को द्व्यणुक-
के कार्य त्र्यणुकमें स्वसजातीय गुणाऽन्तरोंको न
उत्पन्न करने से उक्त नियममें व्यभिचार बना-
हीहै । श० । त्र्यणुकको महत्वरूप विरोधि परि-
माणसे विशिष्ट होनेसे अणुत्व और ह्रस्वत्व
स्वसजातीय गुणों को उसमें नहीं उत्पन्न कर
सकतेहैं । स० । उत्पन्न होकर ही महत्व विरोधि
होगा इससे उत्पत्तिके पूर्व विरोधके न होनेसे उक्त
गुणोंको स्वसजातीय गुणोकी कारणता होसकती
है । श० । विरोधि परिमाणसे विशिष्ट हुआही
कार्य उत्पन्नहोता है इससे विरोधि परिमाणकी
उत्पत्तिसे पूर्व कार्यके नहोनेसे उसमें अणुत्वादि

सुत्पद्यत इतिचेन्न उत्पन्नं द्रव्यंक्षणमगुणं तिष्ठतीत्यभ्युपगमा दपसिद्धान्तापत्तेः यत्तु कारणानांद्व्यणुकानांवहुत्वात्त्र्यणुके महत्वं मृदोमहत्वात् घटे महत्वं द्वितूलपिण्डारब्धेऽतिस्थूलतूल पिण्डेऽवयवसंयोगविशेषान्महत्वं द्व्यणुके परमाणुगत द्वित्वसंख्ययाऽणुत्वम् अणुत्व महत्वयोर्यदसमवायिकारणं तदेव ह्रस्वत्व

स्वसजातीय गुणोंको उत्पन्न नहीं करसकते हैं। स०। ऐसे माननेसे तुम्हारा जो यह सिद्धान्तहै कि उत्पन्न हुआ द्रव्य एक क्षणभर निर्गुण रहता है उसकी हानि होगी और जो यह कहाहै कि द्व्यणुकरूप कारणोंको वहुत होनेसे त्र्यणुकमें मृत्तिका को महत्परिमाण विशिष्ट होनेसे घटमें और दो रुईके पिण्डोंसे वने हुए एक वडे रुईके पिण्डमें अवयवों के संयोग विशेषसे महत्व और परमाणुगत द्वित्व संख्यासे द्व्यणुकमें अणुत्व होताहै और अणुत्व और महत्वका जो असमवायिकारणहै वहही ह्रस्वत्व

दीर्घत्वयोरप्यसमवायिकारणमित्युक्तम्
तदपिनशोभते स्वसमानजातीयगुणार-
म्भकत्वनियमभङ्गस्याऽनिर्मोक्षत्वात् का-
रणगतपरमाणुवहुत्वात्तत्संयोगविशेषा-
च्चमहत्वदीर्घत्वोत्पत्तिप्रसङ्गाच्च यत्पुनरु-
क्तंकारणगुणाःस्वसमानजातीयगुणारम्भ
काइति व्याप्तेःसामान्यगुणेषुव्यभिचारेपि
योद्रव्यसमवायिकारणगतो विशेषगुणः

और दीर्घत्वकाभी असमवायिकारण है वह
भी असङ्गतहै क्योंकि ऐसे माननेसे भी पूर्वोक्त
नियममें व्यभिचारका वारण नहीं हो सकताहै
और कारणमें रहने वाले परमाणुओंके वहुत्व
से और उनके संयोग विशेषसे भी महत्व और
दीर्घत्वकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग होगा और जो
यह कहाहै कि कारणके गुण कार्यमें स्वसजा-
तीय गुणोंको उत्पन्न करतेहैं इस नियमका
काय ---- गुणोंमें व्यभिचार हुए भी जो द्रव्यके
उत्पत्तिसे कारणमें रहनेवाला रूपादि विशेषगुणहै

सः स्वसमानजातीयगुणारम्भकइतिव्याप्तेरव्यभिचारित्वमिति तन्मन्दं चित्रपटहेतुतन्तुगतेषुनीलादिरूपेषुविजातीयचित्ररूपहेतुषुव्यभिचारात् यत्तुमहदारब्धस्यमहत्तरत्वमिति तदपेशलं महद्दीर्घविस्तृतपटारब्धरज्जौ व्यभिचारात् *यत्पुनरुक्तमुत्पत्तेःपूर्वमसतःकार्यस्यघटपटादेर्दण्डचक्रादिव्यापारवशादुत्पत्ति रिति

वह स्वसजातीयगुणका आरम्भक है इस नियममें व्यभिचार नहींहै वहभी समीचीन नहीं है क्योंकि चित्रपटके हेतु तन्तुओंमें विद्यमान नीलादि रूपोंको अपने विजातीय चित्ररूपके जनक होनेसे उक्त नियमभी व्यभिचारीहैं और जो यह नियम कहाहै कि महत्से आरब्ध महत्तर होताहै वहभी वड़े लम्बे चौड़े कपड़े से वनी हुई रस्सीमें व्यभिचारी होनेसे सुन्दर नहींहै * और जो यह कहाहै कि उत्पत्तिसे पूर्व असत घटपटादिकार्य दण्डचक्रादिके व्यापारसे उत्पन्न होतेहैं

तदसङ्गतम् दधिघटरुचकाद्यर्थिभिः प्रतिनियतानिकारणानि क्षीरमृत्तिकासुवर्णादीन्युपादीयमानानि लोके दृश्यन्ते न तद्विपरीतानि कार्यस्यासत्वेऽसतःसर्वत्राविशेषात् सर्वस्मात्सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गेन दध्याद्यर्थिनां क्षीराद्युपादानेप्रवृत्ति र्नस्यात् ननु कार्यस्यासत्वेपि कुतश्चिदतिशयात्प्रवृत्ति नियमोपपत्ति रितिचेन्न

वह भी असङ्गतहै क्योंकि दधि घट और कुण्डलादिकोंकी इच्छा युक्त लोग उनके जो दुग्ध मृत्तिका और सुवर्णादि नियत कारणहैं उनही को ग्रहण करतेहैं अन्यों को नहीं और यदि उत्पात्तिसे पूर्वकार्यको असत् मानोगे तो उसके असत्वको सब पदार्थोंमें तुल्य होनेसे सबसे सबकी उत्पत्तिके प्रसङ्गके होनेसे दध्यादिकोंके अर्थी लोगोंके नियमसे दुग्धादिकोंके ग्रहणमें प्रवृत्ति न होनीचाहिए। श०। कार्यके असत्वको सबमें तुल्य होनेसे भी किसी एक अतिशयसे प्रवृत्तिका नियम होसकताहै।

विकल्पासहत्वात् तथाहि अतिशयः कार्यधर्मः? कारणधर्मोवा? आद्येधर्मित्वा त्प्रागवस्थारूपस्य कार्यस्य सत्वं दुर्वारं स्यात् द्वितीये कारणस्य कार्यनियमार्था- कल्प्यमानाशक्तिः कारणाद्भिन्ना वा? अभिन्ना वा? भिन्नाचेदसती वा? सती वा? नाद्यः भिन्नायाअसत्याश्च शक्तेः

स०। यह तुम्हारा कथन विकल्पोंको नहीं सहन कर सकताहै तथाहि वह अतिशय कार्यका धर्म है वा? कारणका? यदि प्रथमपक्ष मानों तो अति- शयका आश्रय होनेसे उत्पत्तिसे पूर्वकार्यका सत्व सिद्ध होगया और द्वितीयपक्ष में कार्यके नियमके अर्थ कारणमें कल्पना करीहुई शक्ति कारणसे भिन्नहै वा? अभिन्न? यदि भिन्नहै तो असतीहै वा? सती? प्रथमपक्ष तो वन नहीं सकता है क्योंकि शशशृङ्गके सदृश कारणसे भिन्न और असती शक्तिको कार्यकी नियामकता नहीं होसकतीहै। और यदि मानोगे तो शक्तिके तुल्य

शशविषाणवत्कार्यं नियामकत्वायोगात् अन्यथा शशविषाणस्यापितदापत्तेःनद्वि-तीयःभिन्नायासत्याश्चशक्तेर्महिषवत्का-र्यनियामकत्वायोगात् कारणधर्मत्वायो-गाच्च अन्यथा भिन्नत्वाऽविशेषेण महिष-स्यापितदापत्तेः अभिन्नाचेदसतीवा?सती वा? नाद्यः अभिन्नायाअसत्याश्चशक्तेः होनेसे शशशृङ्ग को भी कार्य नियामकता का प्रसंग होगा और द्वितीयपक्ष भी नहीं बन सकता है क्योंकि महिषके सदृश कारणसे भिन्न और सती शक्तिको कार्यकी नियामकता नहीं हो स-कतीहै और जैसे महिष अपनेसे भिन्न किसी पदार्थका धर्म नहींहै ऐसेही शक्ति भी कारणसे भिन्न होनेसे उसका धर्म नहीं हो सकतीहै और यदि मानोंगे शक्तिके सदृश होनेसे महिषको भी कार्यकी नियामकता का प्रसंग होगा और यदि अभिन्न मानों तो वह असती है? वा सती? प्रथम पक्ष तो बन नहीं सकताहै क्योंकि कारणसे

किञ्च पटश्चलतीत्यत्र चलनक्रियाश्रयः पटो दृष्टः तद्वत्पट उत्पद्यत इत्यत्रापि पटस्योत्पत्तिक्रियाश्रयत्वं वाच्यं तथाच क्रियाश्रयस्य पूर्ववृत्तित्वनियमात्सत्कार्य वादप्रसङ्गः अन्यथा पटस्योत्पत्तेःप्राग-सत्वे उत्पत्तिक्रियायानिर्विषयत्वंस्यात् पटउत्पद्यत इति व्यवहारोपि नस्यात्

क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्तमें शक्ति को कारणसे भिन्न मानाहै अभिन्न नहीं। और जैसे पट चलता है इस वाक्य से चलन क्रिया का आश्रय पट प्रतीत होता है ऐसेही पट उत्पन्न होताहै इस वाक्य से उत्पत्ति क्रिया का आश्रय पट प्रतीत होताहै और क्रिया का आश्रय वही होताहै जो क्रियासे पूर्वस्थितहो इससे सिद्धहुआ कि उत्पत्तिसे पूर्व पट था इससे सत्कार्य बाद का प्रसंग हुआ और यदि उत्पत्ति से पूर्व पट को न मानोगे तो उत्पत्ति क्रिया निराश्रय हो जाएगी और पट उत्पन्न होताहै यह व्यवहार भी नहीं बन सकेगा

स्यादेतत् कानामोत्पत्तिः कार्यस्य स्वकारणेसमवायोवा? स्वस्मिन्सत्तासमवायोवा? नाद्यः अलब्धात्मकस्य कार्यस्य कारणेनसम्बन्धाऽयोगात् सतोर्हिद्वयोःसम्बन्धः प्रसिद्धः नासतोस्सदसतोर्वा निरात्मकस्याऽसतःसम्बन्धित्वायोगात् अन्यथा वन्ध्यापुत्रस्यापि सम्बन्धित्वप्रसङ्गः

और उत्पत्ति आप किसको कहते हो अपने कारण में कार्यके समवायको कहते हो ? वा कार्यमें सत्ता के सम्बन्ध को ? प्रथमपक्ष तो बनता नहीं है क्योंकि जबतक कार्य बना नहीं तबतक उसका कारण के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकताहै क्योंकि विद्यमान दो पदार्थों का ही सम्बन्ध लोक में प्रसिद्ध है अविद्यमानोंको नहीं और न एक विद्यमानसे दूसरे अविद्यमानका क्योंकि स्वरूप हीन असत् पदार्थ सम्बन्धि नहीं हो सकताहै यदि ऐसे न मानो तो वन्ध्यापुत्र को भी सम्बन्धित्वका प्रसङ्ग होगा

एतेन द्वितीयोऽपिनिरस्तः अलब्धात्मकत्वस्य तुल्यत्वात् ननु वन्ध्यापुत्रवत्कार्यं सर्वदा सर्वत्रासन्नभवति किन्तु उत्पत्तेः प्राग्ध्वंसानन्तरञ्चासन्मध्येतुसदेवेतिविषम्यात्सम्बन्धित्वोपपत्तिरितिचेन्न प्राग्ध्वंचाऽसत्वाऽविशेषात्सम्बन्धित्वानुपपत्तिरेवमध्येतुसत्वात्सम्बन्धाभावानुक्तेश्च

और इसी युक्तिसे दूसरापक्ष भी खण्डित हुआ क्योंकि जबतक कार्य बना नहीं तबतक उसमें सत्ताका सम्बन्ध नहीं होसकताहै । श० । कार्य वन्ध्यापुत्रके तुल्य सब काल और देशमें असत् नहीं होताहै किन्तु उत्पत्तिसे पूर्व और ध्वंससे अनन्तर असत् होता है और मध्यमें सत् ही होताहै इससे वन्ध्यापुत्रसे विलक्षण होनेसे अपने कारणसे सम्बन्ध वाला हो सकताहै । स० । उत्पत्ति से प्रथम और ध्वंससे उत्तर असत् होनेसे सम्बन्धित्व की अनुपपत्ति हम कहतेहैं और मध्यकाल में सत् होनेसे सम्बन्धके अभावको नहीं कहतेहैं

उत्पत्तेः पूर्वमसद्रूपस्याऽभावात्मकस्यका-र्यस्य कालेनाऽसम्बन्धात्प्रागसदासीदूर्ध्वं मसद्भविष्यतीत्युक्तमयुक्तम् स्यात् नहि वन्ध्यापुत्रो राजाबभूव प्राक्पूर्णवर्मणो ऽभिषेकादित्येवंजातीयकेन प्राक्त्वमर्या दाकरणेन निस्स्वरूपोवन्ध्यापुत्रो राजा बभूवभवतिभविष्यति वा इति विशिष्यते ननु कारकव्यापारादुर्ध्वंभाविनः का-र्यस्य कथं वन्ध्यापुत्रतुल्यत्वमितिचेन्न

और (कार्यको असत् माननेसे) असत् स्वरूप अभावरूप कार्यका कालसे सम्बन्धके न होनेसे कार्य पूर्व असद्रूप था और कार्य आगे असद्रूप होगा यह कथन अयुक्त होगा। क्योंकि पूर्णवर्मा के अभिषेकसे पूर्व वन्ध्यापुत्र राजा था ऐसे किसी के पूर्वत्वमर्यादा करनेसे यह नहीं सिद्ध हो सकताहै कि स्वरूप हीन वन्ध्यापुत्र राजा था वा है वा होगा। श०। कारणोंके व्यापारसे उत्तर कालमें होने वाले कार्यको वन्ध्यापुत्र के तुल्य कैसे कहते हो।

असतः कारकव्यापारादूर्ध्वंसम्भाव्यत्वे वन्ध्यापुत्रोपि कारकव्यापारादूर्ध्वं भविष्यतितथाच वन्ध्यापुत्रस्यकार्याभावस्यचाऽसत्वाविशेषादत्रथावन्ध्यापुत्रःकारक व्यापारादुर्ध्वं नभविष्यति तथाऽसत्कार्यमपि कारकव्यापारादूर्ध्वं नभविष्यति तस्मात्कारक व्यापारादूर्ध्वमुत्पद्यमानं कार्यं प्रागपि सदित्येवावसेयम् ।

स० । यदि असत् की भी कारणोंके व्यापार से उत्तर कालमें उत्पत्ति हो सके तो किसी कारणके व्यापारसे उत्तर कालमें बन्ध्यापुत्र की भी उत्पत्ति होनी चाहिए इससे वन्ध्यापुत्र और कार्य इन दोनोंके असत्व को तुल्य होने से जैसे कारणों के व्पापार से उत्तर कालमें वन्ध्यापुत्र नहीं होता है ऐसेही असत् कार्य भी नहीं हो सकता है इससे यह निश्चय करना चाहिए कि कारण व्यापारोत्तरकालमें होने वाला कार्य उत्पत्तिसे पूर्व भी सद्रूप ही था

यदुक्तमनादिः सान्तः प्रागभाव इति तत्तु-
च्छम् प्रागभावाधिकरणस्य मृत्पिण्डादेः
सादित्वेन तस्यानादित्वाऽसम्भवात् य-
दप्युक्तं सादिरनन्तःप्रध्वंसाभाव इति
तदप्यऽसमञ्जसम् पूर्वेद्युर्ध्वस्तघटकपालि-
कादिकमद्य दृष्ट्वा घटो नश्यतीति व्यव-
हारापत्तेः तस्यनित्यत्वेन वर्तमानत्वात्

और जो यह कहाहै कि अनादि और सान्त (नाशमान) प्रागभावहै वह तुच्छहै क्योंकि प्राग-भाव के आश्रय मृत्पिण्डादिकों को सादि होने से उनमें रहने वाला प्रागभाव अनादि नहीं हो सकताहै। और जो यह कहाहै कि सादि और अनन्त (नाशरहित) प्रध्वंसाभाव है वह भी असङ्गत है क्योंकि ऐसे कहनेसे पूर्व दिनमें नष्ट हुए घट की कपालिका आदिकोंको आज देख कर घट नष्ट होताहै ऐसे व्यव-हार का प्रसंग होगा क्योंकि ध्वंसको नित्य होनेसे वर्तमान कालमें भी वह विद्यमान है

यदप्युक्तं कारणत्रयं विनाकार्यं नोत्पद्यतइति तन्न परमाणुषु जायमानाद्यक्रियाया असमवायिकारणाऽभावेन व्यभिचारात् नन्वस्त्वेतत् कारकव्यापारानर्थक्यं प्रसज्जेत प्राक्सिद्धत्वात्कार्यस्येतिचेन्न कारणस्यकार्याकारेण व्यवस्थापनार्थत्वात् प्रत्युताऽसतः कार्यस्य

और जो यह कहाहै कि समवायी असमवायी और निमित्त इन तीन कारणोंके विना कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं होताहै वह भी असंगत ही है क्योंकि परमाणुओंमें उत्पन्न हुई आद्यक्रियाके असमवायिकारणके न होने से व्यभिचरित है। श०। यदि उत्पत्तिसे पूर्व भी कार्यकी सिद्धि मानोगे तो कारकों के व्यापार को व्यर्थता का प्रसंग होगा । स० समवायि कारणको कार्य के आकारसे स्थित करनेके अर्थ होनेसे कारक व्यापार व्यर्थ नहींहै उलटा यह दोष तुम्हारे ही मतमें होताहै क्योंकि असत् कार्यको

कारकव्यापाराऽविषयत्वात्कारकव्यापाराऽऽहिताऽतिशयाश्रयत्वायोगेन तवैव कारकव्यापारवैयर्थ्यंस्यात् ननु समवायिकारणविषयःकारकव्यापार इति चेन्न समवायिकारणात्कार्यस्यभिन्नत्वेऽन्यविषयेणकारकव्यापारेणान्यनिष्पत्तावतिप्रसङ्गस्यात् अभिन्नत्वेऽपसिद्धान्तापत्तिःस्यात्

कारक व्यापारका विषय न होनेसे कारकव्यापारसे जनित विशेषता का आश्रय कार्य नहीं होसकताहै । श० । समवायि कारण विषयक कारकव्यापार कार्यको उत्पन्न करताहै इससे हमारे मतमें भी वह व्यर्थ नहीं होसकता । स० । यदि समवायि कारणसे कार्यको भिन्न मानोगे तो अन्य विषयक कारकव्यापारसे अन्यकी उत्पत्ति माननेमें कपालादि विषयक कारकव्यापारसे पटादिकोंकी उत्पत्ति रूप अति प्रसङ्ग होगा और यदि अभिन्न मानोगे तो तुम्हारे सिद्धान्त की हानि होगी क्योंकि तुम्हारे सिद्धान्तमें कार्य कारणका भेदहै अभेद नहीं ।

ननु कारणस्य कार्याकारेण व्यवस्थितिः सती ? वा असती ? आद्ये कारकव्यापारवैयर्थ्यं द्वितीयेतु असत्कार्यवादप्रसङ्ग इति चेन्न कार्यस्याऽनिर्वाच्यत्वेन दोषाऽभावात् वस्तुतस्तु असत्कार्यवादवत् सत्कार्यवादेपि दोषाः प्रादुर्भवन्ति तस्मात्कार्यस्य सत्वाऽसत्वाभ्यामनिर्वचनीयत्वात् वक्ष्यमाणरीत्या कार्यस्य कारणाद्भिन्नत्वाऽभिन्नत्वाभ्यां च

श० ।कारणकी जो कार्याकारसे स्थितिहै वह सतीहै? वा असती? आद्य पक्षमें कारक व्यापारको व्यर्थता होगी और द्वितीयपक्षमें असत्कार्यवाद का प्रसंग होगा । स० । कार्यको अनिर्वचनीय होनेसे उक्त दोषोंका अभावहै वस्तुतः असत्कार्यवादके तुल्य सत्कार्यवादमें भी दोष होते हैं इससे कार्यको सत्व और असत्वरूपसे अनिर्वचनीय होनेसे और वक्ष्यमाण रीतिसे कार्य को कारणसे भिन्नत्व और अभिन्नत्व रूपसे भी

अनिर्वचनीयत्वात्सर्वंकार्यमनिर्वचनीय-
मिति वोध्यम् * यदुक्तमुत्पन्नंकार्यं का-
रणाद्भिन्नमिति तदसमञ्जसम् मृद् घट
इत्यऽभेदानुभवात् मृद्घटौभिन्नाविति-
भेदबुद्ध्यऽनुदयाच्च ननु तयोरन्यत्वेपि
समवायवशात्तथाबुद्धिर्नोदेतीतिचेन्न का-
र्यकारणाभ्यामत्यन्तभिन्नस्य समवाय-
स्य तन्नियामकत्वायोगात् समवायस्य

अनिर्वचनीय होनेसे सबकार्य अनिर्वचनीयहैं
यह जानना*और जो यह कहाहै कि उत्पन्न हुआ
कार्य कारणसे भिन्न होताहै वह मृत्तिका ही घटहै
ऐसे अभेदानुभवके होनेसे और मृत्तिका और
घटभिन्नहै ऐसे भेदानुभवके न होनेसे असंगत
है। शं०। कार्य और कारणको भिन्न होनेसे भी
उनका समवाय सम्बन्धहै इससे उसका भेदा-
नुभव नहीं होताहै । स० । कार्य और कारणसे
अत्यन्त भिन्न समवाय उनके भेदानुभवके न
होनेमें प्रयोजक नहीं होसकताहै और समवाय

वन्ध्यापुत्रतुल्यत्वाच्च तथाहि समवायः समवायिभिः सम्बद्धो ? नवा ? आद्ये सम्बन्धः किं समवायः ? उत स्वरूपः ? नाऽऽद्यः अनवस्थाप्रसङ्गात् नद्वितीयः मृद्घटयोरपि स्वरूपसम्बन्धेनैव व्यवहारोपपत्तेः समवायाऽसिद्धेः आद्यद्वितीये समवायस्य समवायिषु वृत्तौ सम्बन्धान्तराऽपेक्षाऽभावे संयोगस्याऽपि

वन्न्यापुत्रके तुल्य असत् है तथाहि समवाय समवायिओं से सम्बद्ध है? वा नहीं?यदि सम्बद्ध है तो उसका सम्बन्ध समवाय है? वा स्वरूप? अनवस्था प्रसङ्गसे प्रथमपक्ष संगत नहीं है। और मृत्तिका और घटका भी स्वरूप सम्बन्ध मान लेनेसे ही व्यवहारके उपपन्न होजानेसे समवाय की असिद्धि का प्रसंग होगा इससे द्वितीयपक्ष भी नहीं बनसकताहै और प्रथम द्वितीय पक्षमें समवायको समवायिओंमें रहनेके अर्थ सम्बन्धान्तरकी अपेक्षाके अभाव हुए संयोग को भी

स्ववृत्तौ सम्बन्धान्तराऽपेक्षा नस्यात्
ननु संयोगस्य गुणत्वात्सम्बन्धान्तरा-
ऽपेक्षा समवायस्य तदभावान्नेतीतिचेन्न
समवायः समवायिषु सम्बन्धविशिष्टो
भवितुमर्हति धर्मत्वात् गोत्ववदित्यनु-
मानप्राप्ताऽपेक्षाकारणस्य तुल्यत्वात्-
नह्यऽसंवद्धस्याऽश्वत्वस्य गोधर्मत्वं दृष्टं

संयोगिओंमें वृत्तिताके अर्थ सम्बन्धान्तर
की अपेक्षा न होनी चाहिए। श०। संयोगको
गुण होनेसे सम्बन्धान्तराऽपेक्षाहै समवायको
गुण न होनेसे नहीं है। स०। समवाय समवा-
यिओंमें सम्बन्ध वाला होना चाहिए धर्म होनेसे
जैसा गोत्वहै इस अनुमानसे प्राप्त हुए धर्मपने
रूप अपेक्षाके कारणको तुल्य होनेसे संयो-
गको अपेक्षा है और समवायको नहीं है यह
कथन असङ्गतहै और जो जिससे सम्बद्ध नहीं
होताहै वह उसका धर्म नहीं होताहै जैसा
गौसे असम्बद्ध अश्वत्व गौका धर्म नहीं है

गुणपरिभाषायाश्च गुणत्वाऽभावेपि कर्मसामान्यादीनां सम्बन्धाऽपेक्षादर्शनेनाऽप्रयोजकत्वात् किञ्च निष्पापत्वादयो गुणा इति श्रुतिस्मृत्यादिषु व्यवहारादिष्टधर्मोगुण इति परिभाषया समवायस्यापि गुणत्वाच्च जातिविशेषोगुणत्वमिति परिभाषातु समवायसिद्ध्युत्तरकालीननित्याऽनेकसमवेता जातिरिति

इस नियमसे यदि समवाय सम्बद्ध न होगा तो धर्म ही नहीं होसकेगा और गुण न होनेसे भी कर्म सामान्यादिकोंको सम्बन्धकी अपेक्षाके देखनेसे गुणनाम सम्बन्धापेक्षा का नियामक नहीं होसकता है और निष्पापत्वादि गुणहैं ऐसे श्रुतिस्मृत्यादिकों में व्यवहार होनेसे इष्टधर्म का नाम गुणहै ऐसे संकेत कर लेनेसे समवाय भी गुण होसकता है। जाति विशेषका नाम गुणत्वहै यह परिभाषा समवायकी सिद्धिके उत्तरकाल में होने वाले नित्य और अनेकोंमें समवाय सम्बन्धसे वर्त्तमान धर्मजातिहै

ज्ञानाधीना तस्यच समवायज्ञानाधीन-
त्वेनसमवायसिद्धेःप्राक्संयोगस्यगुणत्व-
मसिद्धमितिदिक् ।यदुक्तमयुतसिद्धयोः स
मवायइति अत्र भवान्प्रष्टव्यःकिमुभयोर-
युतसिद्धत्वं ?उतान्यतरस्य?नाद्यः प्राक्सि
द्धस्य कार्यात्कारणस्यायुतसिद्धत्वानुपप-
त्तेःद्वितीये किमसिद्धस्य समवायसम्बन्धः?

इस ज्ञानके अधीनहै और यह ज्ञान समवाय ज्ञानके अधीनहै इससे समवायकी सिद्धिसे प्रथम संयोगमें गुणत्व सिद्ध नहीं हो सकताहै इस रीति का खण्डन मण्डन और भी वहुत है यह एक मार्ग मात्र दिखाया है। और जो यह कहाहै कि अयुत सिद्ध पदार्थों का समवाय सम्बन्ध होता है इसमें हम आपसे यह पूछतेहैं कि अयुत सिद्ध आप दोनों को मानते हो ? वा एक को ? कार्यसे प्रथम सिद्ध कारण अयुतसिद्ध नहीं होसकताहै इससे प्रथमपक्ष तो वनता नहीं और दूसरे पक्ष में असिद्ध पदार्थका समवाय सम्बन्ध मानते हो?

उत सिद्धस्य? नाद्यः प्रागसिद्धस्यालब्धात्मकस्य कार्यस्य कारणेन सम्बन्धायोगेनाऽयुतसिद्धत्वायोगात् सम्बन्धस्य द्विनिष्ठत्वात् नद्वितीयः प्राक्कारणसम्बन्धात्कार्यस्य सिद्धावभ्युपगम्यमानायामयुतसिद्धत्वं नस्यात् सतोरप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोगइत्यभ्युपगमेन तन्तुपटयोरपिसंयोगापत्तिश्च स्यात् किञ्च किन्नामायुसिद्धत्वं

वा सिद्धका प्रथम पक्ष तो बन नहीं सकताहै क्योंकि सम्वन्ध को दो पदार्थोंमें वृत्ति होनेसे उत्पत्ति से पूर्व असिद्ध तथा स्वरूपहीन कार्यका कारणके साथ सम्बन्ध नहीं होसकताहै इससे कार्य अयुत सिद्ध नहीं होसकताहै। और कारण सम्बंधसे प्रथम यदि कार्यकी सिद्धि मानोगे तो कार्य अयुत सिद्ध नहीं हो सकेगा और सत् और अप्राप्त दो पदार्थों की प्राप्तिको संयोग मानने से तन्तु और पटके भी संयोगका प्रसङ्ग होगा इससे द्वितीय पक्ष भी असङ्गतहै और अयुत सिद्ध आप किसको कहते हो

देशतःअपृथक्सिद्धत्वम् ? उत कालतः? अथवा स्वभावतः ? नाद्यः शुक्लः पट इत्यत्र तन्तु देशे पटः पटदेशे शुक्लगुणइति व्यभिचारात् नद्वितीयः सव्यदक्षिणयोरपि गोविषाणयोरयुतसिद्धत्वप्रसङ्गात् न तृतीयः स्वभावस्य स्वरूपाऽनतिरेकेणाऽस्मदिष्टाऽभेदसिद्धेः किञ्च संयोगस्य

क्या देशसे पृथक् सिद्धत्वके अभावको ? वा कालसे ? अथवा स्वरूपसे ? पट और उसका रूप अयुत सिद्ध हैं परन्तु उनमें देशसे पृथक् सिद्धत्व का अभाव नहीं है क्योंकि तन्तु देशमें पटहै और पट देश में रूप है इससे प्रथम पक्ष असङ्गत है और काल से पृथक् सिद्धत्वाभाववाले गौके वाम दक्षिण शृङ्गोंको भी अयुत सिद्धत्व के प्रसङ्गसे द्वितीय पक्ष भी असंगतहै और तृतीयपक्ष में स्वभाव को स्वरूपसे अभिन्न होनेसे हमारे सम्मत अभेदकी सिद्धिका प्रसंग होगा इससे वह भी नहीं बन सकताहै और संयोग

समवायस्य वा सम्बन्धस्य सम्बन्धिभिन्न-
त्वेनाऽस्तित्वेप्रमाणाभावात् ननु सम्ब-
न्धः सम्बन्धिभिन्नःतद्विलक्षणशब्दधीगम्य
त्वात् वस्त्वऽन्तरवदित्यनुमानं तत्र प्रमा-
णमितिचेन्न एकस्यापि स्वरूपबाह्यरूपा
पेक्षयामनुष्यो ब्राह्मणः श्रोत्रियो वदान्य

और समवाय सम्बन्धके सम्बन्धिओंसे भिन्न
होनेमें कोई प्रमाण नहीं है । श० । सम्बन्ध
सम्बन्धिओंसे भिन्न है सम्बन्धिविषयक शब्द
और ज्ञानसे विलक्षण शब्द और ज्ञानका विषय
होनेसे। जो जिस विषयक शब्द और ज्ञानसे
विलक्षणशब्द और ज्ञानका विषय होताहै वह
उससे भिन्न होताहै जैसा घटसे भिन्न पटहै यह
अनुमान सम्बंधिओंसे भिन्न सम्बन्धमें प्रमाण
है।स०। एक भी वस्तु स्वाभाविक और औपाधि-
करूपकी अपेक्षासे अनेक विलक्षण शब्द और
ज्ञानका विषय होताहै जैसे एकही पुरुष मनुष्य
ब्राह्मण वेदवेत्ता और दानशूर कहा जाता है

इत्याद्यऽनेक विलक्षणशब्दधीगम्यत्वेन व्यभिचारात् सम्बन्धिनोरेव सम्बन्धिशब्दप्रत्ययव्यतिरेकेण मनुष्यो ब्राह्मणः श्रोत्रिय इत्यादिवत्संयोगसमवायादिशब्दप्रत्ययाऽर्हत्वसम्भवाच्च विलक्षणशब्दधीगम्यत्वादित्युपलब्धिघटितेन लिङ्गेन प्राप्तस्य वस्त्वन्तरस्य संयोगादेः सम्बन्धिव्यतिरेकेणाऽनुपलब्ध्या तदभावनिश्चयाच्च

इससे उक्त अनुमान व्यभिचारी है और जैसे एकही पुरुष मनुष्य ब्राह्मण श्रोत्रिय आदि अनेक विलक्षण शब्दों और ज्ञानों का विषय होता है ऐसे सम्बन्धि ही सम्बन्धि शब्द और तज्जन्य ज्ञानसे विलक्षण संयोग समवायादि शब्दों और तज्जन्य ज्ञानोंके विषय हो सकतेहैं और विलक्षण शब्द और ज्ञानका विषयत्वरूप ज्ञानघटित हेतुसे प्राप्त हुए सम्बन्धिओं से भिन्न संयोगादि सम्बन्धोंकी सम्बंधिओंसे अलग होकर प्रतीतिके न होनेसे उनके अभावका निश्चय होताहै

एतेन गुणादीनां द्रव्याभिन्नत्वं व्याख्यातम् गुणादयोद्रव्याभिन्नाः तदधीनत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाशशभिन्नः कुशः इत्यनुमानेन तद्भेदस्य बाधितत्वाच्च अन्यथा गुणादीनांद्रव्यधर्मत्वमपि नस्यात् गुणादयो द्रव्यधर्म्मानस्युःभिन्नत्वात् महिषाश्ववत्

इससे उक्त अनुमान सम्बन्धि भिन्न सम्बन्धका साधक नहीं हो सकताहै और इनहीं युक्तियोंसे गुणादिकोंमें द्रव्यका अभेद सिद्ध होताहै और गुणादि द्रव्यसे अभिन्न है द्रव्यके अधीन होनेसे जो जिस से अभिन्न नहीं होताहै वह उसके आधीन नहीं होताहै जैसे खरगोशसे भिन्न कुशाहै इस अनुमानसे गुणादिकोंमें द्रव्यका भेद बाधितहै और यदि गुणादिकोंको द्रव्यसे भिन्न मानोंगे तो वे उसके धर्म भी नहीं होसकेंगे क्योंकि गुणादि द्रव्यके धर्म नहीं होसकतेहैं उससे भिन्न होनेसे जैसा अश्वसे भिन्न महिष अश्वका धर्म नहीं होसकताहै

इत्यनुमानबाधात् किञ्च अन्योऽन्याभाव-रूपभेदाऽसिद्धेश्च तदऽभेदसिद्धिः तथाहि घटःपटो नभवतीतिवत् घटो घटभेदो नभवतीतिप्रतीतिसिद्धस्य घटभेदभेदस्य किं घटरूपत्वं? उत भेदरूपत्वं? अथवा तदुभयभिन्नत्वं? नाद्यः अभावरूपस्य भेदस्य भावरूपत्वायोगात् प्रतियोग्यतिरिक्ताभावासिद्धिप्रसङ्गेनाऽपसिद्धान्तापत्तेश्च

इस अनुमान से भिन्न पदार्थोंका धर्म धर्मिभाव बाधितहै और अन्योन्याभावरूप भेदकी असिद्धिसे भी द्रव्य गुणका अभेद सिद्ध होताहै तथाहि जैसे घट पट नहीं है यह प्रतीति है ऐसे घट घटभेद नहीं है इस प्रतीतिसे सिद्ध हुए घटमें घटभेदके भेदको क्या घटरूप मानतेहो? वा भेदरूप? अथवा दोनोंसे भिन्नरूप? अभावको भावरूपता के असम्भव और प्रतियोगीसे भिन्न अभावकी असिद्धिके प्रसंगसे सिद्धान्तके हानिकी आपत्ति से प्रथमपक्ष संगत नहीं है।

नद्वितीयः आत्माश्रयात् नतृतीयःअन-वस्थापत्तेः। स्यादेतत् कारणेष्ववयवद्रव्येषु वर्तमानंकार्यमवयविद्रव्यं किं समस्तेष्ववयवेषु वर्तते? उत प्रत्यवयवम् ? आद्ये अवयविनःपटादेस्तन्त्वादिष्ववयवेषु त्रित्वादिवत्स्वरूपेण वृत्तिः?उत हस्तेकोशेच वर्तमानाऽसिवदवयवशो वा ? नाद्यः

और द्वितीयपक्षमें आत्माश्रय है क्योंकि अभावज्ञानमें प्रतियोगि ज्ञानको कारण होने से घट भेद भेद स्वज्ञानमें स्वाभिन्नघट भेद रूप प्रतियोगिज्ञानसापेक्ष है और अनवस्था प्रसङ्गसे तृतीयपक्ष भी नहीं बन सकता है। और अवयव द्रव्यरूपकारणोंमें रहता हुआ कार्य क्या सब अवयओंमे रहताहै ? वा एक २ अवयवोंमें ? प्रथम पक्षमें पटादि रूप अवयवी तन्तु आदिरूप अवयओंमें त्रित्वादिकोंके तुल्य स्वरूपसे रहतेहैं? वा हाथ और कोशमें खड्ग के तुल्य अवयओं से रहते हैं ? प्रथम पक्ष तो बन नहीं सकता है

व्यासज्यवृत्तिवस्तु प्रत्यक्षस्य यावदाश्र-
यप्रत्यक्षजन्यत्वात् संवृतपटादेर्यावद-
वयवानामप्रत्यक्षत्वादप्रत्यक्षत्वं स्यात्
नद्वितीयः अनवस्थाप्रसङ्गात् तथाहि आ
रम्भकावयवव्यतिरेकेण यैरवयवैरारम्भ
केष्ववयवेष्ववयवशोऽवयवी वर्तेत तेऽ-
वयवाः कल्पेरन् यथा कोशावयवव्यति-
रिक्तैरवयवैरसिः कोशं व्याप्नोति तद्वत्

क्योंकि व्यासज्यवृत्ति पदार्थके प्रत्यक्षको
उसके सव आश्रयोंके प्रत्यक्षसे जन्य होनेसे इकट्ठे
करे हुए पटादिकोंके सव अवयवोंके प्रत्यक्षके
न होने से उनको अप्रत्यक्षत्वका प्रसंग होगा।
और द्वियीय पक्षभी नहीं वन सकता है क्योंकि
इसमें अनवस्थाका प्रसंग होता है तथाहि जैसे
कोशके अवयवोंसे भिन्न अपने अवयवोंसे खड्ग
कोशमें रहता है ऐसे ही आरम्भक अवयवोंसे
भिन्न जिन अवयवोंसे अवयवी आरम्भक अव-
यवोंमें रहेगा वे अवयव कल्पना करने होंगे

तथाच तेषु तेष्ववयवेषु वर्तयितुमन्ये-
षामन्येषामवयवानां कल्पनीयत्वादन-
वस्थाप्रसङ्गः । प्रत्यवयवंवर्तत इति पक्षे
एकस्मिँस्तन्तौ पटवृत्तिकाले तन्त्वन्तरे
पटस्य वृत्तिर्नस्यात् वृत्तावप्यनेकत्वापत्तेः
एकत्र व्यापारेऽन्यत्रव्यापारानुपपत्तेश्च
ननु यथायुगपदनेकव्यक्तिषु वृत्तावपि जा
तेरनेकत्वदोषोनास्ति तथाऽवयविनोपि

तब फिर उन उन अवयवोंमें रहनेके अर्थ
अन्य अन्य अवयवों की कल्पना करनी होगी
इससे अनवस्था प्रसङ्ग होगा । और एक एक
अवयवोंमें रहने पक्षमें एक तन्तुमें वृत्ति कालमें
पटको दूसरे तन्तुमें वृत्ति नहीं होसकेगा यदि
मानोंगे तो पटको अनेकताका प्रसङ्ग होगा और
एकमें व्यापार कालमें दूसरेमें व्यापार हो नहीं
सकताहै। श० जैसे गोत्वादि जातिको एक कालमें
अनेक व्यक्तियोंमें वृत्ति होनेसे भी अनेकत्व प्रसंग
रूप दोष नहीं होताहै ऐसेही अवयवीको भी

युगपदनेकावयवेषु वृत्तौ दोषोनास्तीति चेन्न गोत्वादिजातिवदवयविनोयुगपदनेकाऽवयववृत्तित्वाऽनुभवाभावात् अन्यथा यथा गोत्वं प्रतिव्यक्तिप्रत्यक्षंगृह्यतेतथा अवयव्यपि प्रत्यऽवयवं प्रत्यक्षंगृह्येत-यदुक्तं घटो मृद्भिन्नः तद्विरुद्धपृथुबुध्ना-दिविशेषाकारवत्वात् वृक्षवदिति तन्न

एक कालमें अनेक अवयवोंमें वृत्ति होनेसे उक्त दोष नहीं होगा । स० जैसे गोत्वादि जातिके एक कालमें अनेक व्यक्तिओंमें वृत्तित्व का अनुभव होताहै तैसे अवयवीके एक कालमें अनेक अवयवोंमें वृत्तित्वका अनुभव नहीं होताहै और यदि प्रत्येक अवयवमें अवयवीको मानोंगे तो प्रतिव्यक्तिमें गोत्वके तुल्य अवयवी का भी प्रत्यवयवमें प्रत्यक्ष होना चाहिए। और जो यह कहाहे कि घट मृत्तिकासे भिन्नहै मृत्तिका के आकारसे विलक्षण विशालोदरादि रूप आकारवाला होनेसे जैसा वृक्षहै वह समीचीन नहींहै

एकस्यैव देवदत्तस्य सङ्कुचितहस्तपादादिमत्वेन प्रसारितहस्तपादादिमत्वेन च विशेषितत्वेपि वस्त्वन्यत्वाऽदर्शनेन व्यभिचारात् किञ्च प्रत्यहमेधमानानां पित्रादिदेहानामवस्थाभेदेपि जन्ममरणयोरदर्शनेन वस्त्वन्यत्वाऽसम्भवाद्व्यभिचारः अन्यथा पित्रादयोमृता अन्येपित्रादय उत्पन्नाश्चेति प्रत्यहं

क्योंकि सङ्कुचित हस्तपादादिरूप और प्रसारित हस्तपादादिरूप देवदत्तके आकारके भेदक होनेसे भी उसके भेदके न देखने से उक्तानुमान व्यभिचारी है और प्रतिदिन बढ़ती हुई पिता आदिके देहोंकी अवस्था के भेद होनेसे भी उनके जन्ममरण देखनेमें नहीं आते हैं इससे आकारके भेद मात्रसे वस्तुका भेद नहीं होसकता है इससे भी उक्तानुमान व्यभिचारी है और यदि आकार भेदमात्रसे वस्तुका भेद मानोंगे तो पूर्व पिता आदि मरगए नए उत्पन्न हुए ऐसा प्रतिदिन

व्यवहारः स्यात् नचेष्टापत्तिः सोयं मम पिता सोयं मम भ्राता सेयं मम मा-तेति प्रत्यभिज्ञानात् अन्यथा पित्रादि-व्यवहारलोपप्रसङ्गः स्यात् दृष्टान्तासि-द्धेश्च तस्मात्कारणाद्भिन्नं कार्यमित्येतद-सिद्धम् * स्यादेतत् यदुक्तमाकाशोनो-त्पद्यते सामग्रीशून्यत्वात् आत्मवत्

व्यवहार होना चाहिए और इस व्यवहारमें आप इष्टापत्ति नहीं कह सकतेहैं क्योंकि यह वहही मेरा पिता है यह वहही मेरा भाई है यह वहही मेरी माताहै इस रीतिसे पूर्व पिता आदिकी ही प्रत्यभिज्ञा होतीहै और उक्त व्यवहारके न मानने से पिता पुत्रादि व्यवहारके लोपका प्रसङ्गभी होगा और दृष्टान्त भी असिद्ध है क्योंकि वृक्षको हम वीज से भिन्न नहीं मानते हैं और दृष्टान्त वहही होताहै जो वादी प्रतिवादी दोनोंको सम्मतहो इस से कार्यको कारणसे भिन्न कहना असङ्गतहै ।* और जो यह कहाहै कि आकाश उत्पन्न नहीं होता

नचाऽविद्यात्मनोः सत्वाद्धेत्वसिद्धिरिति वाच्यम् विजातीयत्वेन तयोरारम्भकत्वायोगात् असंयुक्तत्वात्संयोगस्यद्रव्याऽसमवायिकारणस्यचाऽभावात् तथाच समवाय्यऽसमवायिनोरभावेन हेत्वसिद्ध्यऽभावादाकाशस्याऽजत्वसिद्धिरिति तदपेशलम् आकाशो विकारः विभक्तत्वात्

सामग्रीके (उत्पन्नकरनेवाले कारणके) न होनेसे जैसा आत्माहै। श०। अविद्या और आत्माको सामग्री होनेसे सामग्री का न होना रूप हेतु असिद्ध है। स०। उन को विजातीय होनेसे वे आकाशके आरम्भक नहीं हो सकते हैं और उनको असंयुक्त होनेसे संयोगरूप असमवायिकारणकाभी अभाव है इससे समवायी और असमवायी कारणके न होनेसे हेतुकी असिद्धि नहीं है इससे आकाश को अजत्व सिद्ध हुआ वह समीचीन नहींहै क्योंकि आकाश कार्य है विभागाश्रय होनेसे जो विभक्त है वह कार्यहै

घटवत् योविभक्तः सविकारः यथा घटः यस्त्वविकारः सन्नविभक्तः यथा आत्मे-त्यनुमानेनाऽऽकाशोत्पत्तिसम्भवात् दि-गादीनांपक्षसमत्वेन व्यभिचाराभावा-च्च ननु आत्मनि विकारित्वाऽभाववति विभक्तत्वहेतोस्सत्वाद्व्यभिचार इतिचेन्न धर्मिसमानसत्ताकविभागस्य हेतुत्वात् परमार्थात्मनि विभागस्य कल्पितत्वेन

जैसा घटहै जो कार्य नहींहै वह विभक्त नहीं है जैसा आत्माहै इस अनुमानसे आकाशकी उत्प-त्तिका सम्भव है और दिगादिकोंको पक्षसम होनेसे उक्तानुमान में व्यभिचार नहीं है। श०। आत्मा कार्य नहीं है और विभागाश्रय है इससे उक्त हेतु व्यभिचारी है। स०। धर्मिके समान सत्ता वाला विभाग हेतु है आत्माकी पारमार्थिक सत्ता है और उसमें वृत्ति (स्थित) विभागको कल्पित होनेसे उसकी प्रातीतिक सत्ताहै इससे आत्मसमसत्ताक-विभाग आत्मामें न होनेसे व्यभिचार नहीं है

भिन्नसत्ताकत्वात् निर्गुणाऽऽत्मनिविभागाऽसम्भवेन व्यभिचारशङ्काया अप्यभावात् नचाऽप्रयोजकता द्व्यणुकादीनामपि नित्यत्वापत्तेः । अत्र अज्ञानस्याऽनादिभावत्वस्वीकारे तस्मिन्तत्संबन्धादौ व्यभिचारवारणाय अज्ञानाऽन्यद्रव्यत्वं विभक्तत्वहेतुविशेषणं बोध्यं

और वस्तुतःनिर्गुण आत्मामें विभागका असम्भवहै इससे व्यभिचारकी शङ्का भी नहीं होसकती है।श०। उक्त हेतुमें व्यभिचार शङ्काका निवर्त्तक कोई तर्क नहींहै इससे वह निज साध्यका साधक नहीं होसकताहै।स०। यदि विभागका आश्रय वस्तु भी कार्य न होतो द्व्यणुकादि भी नित्य होजाएगे इस तर्कके विद्यमान होनेसे उक्त दोष नहीं है। और अज्ञान को अनादि भाव रूप स्वीकार करे तो उसमें और उसका आत्माका संबन्ध आदिओंमें अतिव्याप्ति दोष परिहारके अर्थ इस अनुमान के विभक्तत्व हेतु में अज्ञानाऽन्यद्रव्यत्वं विशेषण जान लेना।

ननु आत्मा कार्यः विभक्तत्वाद्वस्तुत्वा-
द्वा घटवदितिचेन्न निर्धर्मिकेआत्मनिव-
स्तुत्वाद्यभावेनहेत्वऽसिद्धेः ननु दुःखि-
त्वादिधर्माणामात्मनि प्रतीयमानत्वा-
त्कथमात्मनोनिर्धर्मिकत्वमितिचेन्न नाहं
विभुः किन्तु परिच्छिन्नोहंस्थूलोहंकृशोह
मित्यादिवत्तेषामौपाधिकधर्मत्वोपपत्तेः

श०। आत्मा कार्यहै विभागाश्रय और वस्तु-
त्वाश्रय होने से जैसा घट है इस अनुमानसे
आत्मामें कार्यत्व सिद्ध होताहै। स०। सकल धर्मों
से रहित आत्मामें वस्तुत्वादि धर्मोंके न होनेसे
उक्तानुमानमें हेत्वऽसिद्धि दोष है। श०। दुःखि-
त्वादि धर्मोंको आत्मामें प्रतीयमान होनेसे आत्मा
निर्धर्मिक नहीं हो सकताहै। स०। जैसे मैं विभु
नहीं किन्तु परिच्छिन्न स्थूल और कृश हूं इत्यादि
प्रतीतिओंसे आत्मामें विभुत्वादिकों का अभाव
और परिच्छिन्नत्वादि धर्म प्रतीत होतेहैं परन्तु
वे औपाधिकहैं ऐसेही दुःखित्वादिक भी हैं

अन्यथा विभुत्वादिकमपि नस्यात् किञ्च आत्मनो ये दुःखित्वादिकमभ्युपगच्छन्ति तेऽत्र प्रष्टव्याः किं आत्मनोदुःखित्वादिकं दीपस्यप्रकाशवत् गुडस्यमाधुर्यवत् स्वाभाविकं? उत स्फटिकेलौहित्यवदौपाधिकम्? नाद्यः दुःखित्वादीनांनाशाय तत्वविचारादौ प्रवृत्तिर्नस्यात्

और यदि प्रतीतिके अनुरोध से दुःखित्वादिकों को आत्माके धर्म मानोंगे तो उसीसे आत्मामें विभुत्वाऽभाव और परिच्छिन्नत्वादि धर्म भी मानने पड़ेंगे। और जो लोग दुःखित्वादिकोंको आत्माके धर्म मानते हैं उनसे हम यह पूछते हैं क्या आत्माके दुःखित्वादि धर्म दीपकके प्रकाश, और गुड़के माधुर्यके तुल्य स्वाभाविकहैं ? वा स्फटिक की रक्तताके सदृश औपाधिक हैं ? दुःखित्वादिकोंके नाश के अर्थ तत्व विचारादिकों में प्रवृत्तिके अभावके प्रसङ्गसे प्रथमपक्ष असंगत है क्योंकि दुःखित्वादि स्वाभाविक हैं

स्वाभाविकत्वात् नहि बुद्धिमता स्वभाव-
नाशाय यत्नः क्रियते कृतो वा नाशोभवति
स्वस्यैव नाशापत्तेः प्रकाशादिवत् एतेन
ये चक्राङ्किता निर्विशेषाऽऽत्मवस्त्वऽभा-
ववादिनः तेस्वात्महननकर्तार इति सि-
द्धम् किञ्च सुषुप्तौ तेषामदर्शनेन स्वाभा-
विकत्वाऽसम्भवात् नहि दीपस्यप्रकाशः

और स्वभावके नाशके अर्थ कोई भी बुद्धिमान
यत्न नहीं करताहै और करनेसे स्वभावका नाश
भी नहीं हो सकताहै क्योंकि जैसे प्रकाशके नाश
होनेसे दीपक का नाश हो जाताहै ऐसे स्वभावका
नाश होनेसे अपनाही नाश हो जाएगा इससे
यह सिद्ध हुआ कि जो चक्राङ्कित लोग निर्ध
र्मिक आत्मवस्तु का अभाव मानते हैं वे आत्म
हत्यारे हैं और सुषुप्ति कालमें दुःखित्वादिकोंके
न देखने से वे स्वाभाविक नहीं होसकतेहैं क्योंकि
जो जिसका स्वाभाविक धर्म होताहै वह सदाही
उसके आश्रित रहताहै जैसा दीपकका प्रकाशहै

कदाचिद्दीपाश्रयः कदाचिन्नेतीति वक्तुं शक्यं नद्वितीयः अस्मदभिमतपारमार्थिकनिर्धर्मिकत्वोपपत्तेः तथाच हेत्वसिद्धिः किञ्च सर्वसाक्षिणआत्मनःकार्यत्वे शून्यवादप्रसङ्गःस्यात् नचेष्टापत्तिः शून्यस्याऽसाक्षिकत्वे शून्यस्याऽप्यसिद्धिः स्यात् किञ्च आत्मा कार्यत्वाभाववान् साक्षिणोऽभावात् प्रागभावानुभवितुरभावाच्च

ऐसा नहीं कह सकतेहैं कि दीपकका प्रकाश कभी दीपकाश्रित है कभी नहीं है क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष विरुद्धहै और हमारे सम्मत वस्तुतः निर्धमिकत्वकी आत्मामें सिद्धिके प्रसंगसे द्वितीयपक्ष भी नहीं बन सकता है इससे उक्तानुमान में हेत्व सिद्धि है और सबके साक्षी आत्माको भी यदि कार्य मानोगे तो शून्यवादका प्रसंग होगा द:रिक वह इष्टापत्ति नहीं हो सकताहै क्योंकि औ[illegible]के न होनेसे शून्य की भी सिद्धि नहीं हो साक्षी हैऔर आत्मा कार्य (जन्य) नहीं है सके गा

प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वेप्यसिद्धप्रमेयाणा-
माकाशादीनां प्रमेयत्वसिद्धयेप्रमाणापे
क्षत्वान्नतद्वैयर्थ्यमित्यपि बोध्यम् तथाच
नित्यस्याऽऽत्मनोऽविद्यासहितस्योपादान
स्याऽदृष्टादिनिमित्तस्यच सत्वादाकाशानु
त्पत्तिहेतोस्सामग्रीशून्यत्वस्य स्वरूपाऽ-
सिद्धेः उक्त सत्प्रतिपक्षबाधाच्च आका-
शस्य कार्यत्वं निरवद्यम् । अविद्याचात्र

कि स्वतःसिद्ध होने से आत्मा को प्रमाणा-
न्तर की अपेक्षा के न होनेसे भी जो आका-
शादि पदार्थ स्वतःसिद्ध नहीं हैं उनको प्रमेयत्व
सिद्धि के अर्थ प्रमाण की अपेक्षाहै इससे वह
व्यर्थ नहीं है। और अविद्या सहित नित्य आ-
त्माको उपादान और अदृष्टों को निमित्त कारण
होनेसे आकाशकी अनुत्पत्तिमें हेतु जो सामग्री
शून्यत्वहै वह स्वरूपासिद्ध है और विभक्तत्व
तुक अनुमानसे आकाशका अजत्व बाधित
है इससे आका[illegible] कार्यत्व निर्दोष है।

तदभावेनाप्यात्मनः कार्यत्वाऽसिद्धिः अहमस्मि वा नवेति संशयाद्यभावात् किञ्च "प्रमाताच प्रमाणंच प्रमेयं प्रमितिस्तथा यस्यप्रसादात्सिद्ध्यन्तितत्सिद्धौकिमपेक्षत" इत्युक्तत्वादप्यात्मनोऽजत्वसिद्धिः एतेनआत्मनःकार्यत्वे प्रमाणाऽद्यभावःस्पष्टीकृतः आत्मनःस्वतः सिद्धत्वेन

क्योंकि जिसघटादिपदार्थके सत्तादि अन्याधीन होतेहैं उसके होनेमें कभी घटहै वा नहींहै इसप्रकार संशय भी हो जाता है परन्तु आत्मा के होने में कभी किसी को ऐसा संशय नहीं होता है कि मैं हूं वा नहीं इससे भी आत्मा कार्य नहीं हो सकताहै। और जिसके प्रसादसे प्रमाता प्रमाण प्रमेय और प्रमिति यह सब सिद्ध होते हैं उसकी सिद्धिके अर्थ किसकी अपेक्षा हो। इस वृद्ध वचन से भी आत्मा में अजत्व की सिद्धि होती है और इतनेसे आत्माके कार्यत्वमें प्रमाणादिकों का अभाव स्पष्ट करा है और यहां यह भी जानना चाहिए

प्रमाणान्तरनिरपेक्षत्वेप्यसिद्धप्रमेयाणा-
माकाशादीनां प्रमेयत्वसिद्धयेप्रमाणापे
क्षत्वान्नतद्वैयर्थ्यमित्यपि बोध्यम् तथाच
नित्यस्याऽऽत्मनोऽविद्यासहितस्योपादान
स्याऽदृष्टादिनिमित्तस्यच सत्वादाकाशानु
त्पत्तिहेतोस्सामग्रीशून्यत्वस्य स्वरूपाऽ-
सिद्धेः उक्त सत्प्रतिपक्षबाधाच्च आका-
शस्य कार्यत्वं निरवद्यम् । अविद्याचात्र

कि स्वतःसिद्ध होने से आत्मा को प्रमाणा-
न्तर की अपेक्षा के न होनेसे भी जो आका-
शादि पदार्थ स्वतःसिद्ध नहीं हैं उनको प्रमेयत्व
सिद्धि के अर्थ प्रमाण की अपेक्षाहै इससे वह
व्यर्थ नहीं है। और अविद्या सहित नित्य आ-
त्माको उपादान और अदृष्टों को निमित्त कारण
होनेसे आकाशकी अनुत्पत्तिमें हेतु जो सामग्री
शून्यत्वहै वह स्वरूपासिद्ध है और विभक्तत्व
हेतुक अनुमानसे आकाशका अजत्व बाधित
भी है इससे आकाशका कार्यत्व निर्दोष है।

जडप्रपञ्चकार्याऽन्यथाऽनुपपत्या सिद्धस त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरिति बोध्या यत्तूक्तमात्माविद्ययोर्विजातीयत्वान्नाकाशारम्भकत्वमिति अत्र भवान् प्रष्टव्यः किं कारणमात्रस्यसाजात्यनियमः ? उत समवायिकारणस्य ? नाद्यः घटाद्यऽसमवायिकारणे संयोगादौ द्रव्यगुणयोर्विजातीयत्वेन व्यभिचारात्

और जड़ प्रपञ्चरूप कार्यके अन्यथा न बननेसे सिद्ध हुई सत्वरजतमोगुणात्मिका प्रकृति यहां अविद्या शब्दका अर्थ जानना। और जो यह कहाहै कि आत्मा और अविद्याको विजातीय होने से आकाशकी आरम्भकता नहीं हो सकतीहै इसमें हम यह पूछते हैं कि कारणमात्र को सजातीयताका नियम है ? वा समवायि कारण को ? घटादिकों के असमवायिकारण संयोगको गुण होनेसे कपालादि द्रव्यरूप कारणोंसे विजातीयत्वहै इससे व्यभिचार होनेसे प्रथमपक्ष असङ्गतहै

द्वितीये समवायिताऽवच्छेदकधर्मेण सा-
जात्यं ? उत सत्तादिना ? नाद्यः एकरज्वारं
भकसूत्रगोवालेषुव्यभिचारात् एकविचि
त्रकंबलारंभकसूत्रोर्णादिषु व्यभिचाराच्च
नचसूत्रगोवालाभ्यांनरज्वादि द्रव्यान्त-
रमिति वाच्यम् पटादेरपितथात्वापत्तेः

और द्वितीयपक्षमें समवायितावच्छेदक धर्म रूप
सेसाजात्य कहते हो? वा सत्तादिरूपसे ? इन दो
पक्षों में से प्रथमपक्ष असङ्गतहै क्योंकि एक रस्सी
के आरम्भक सूत्रों और गोवालों में और एक
कम्वल के आरम्भक सूत्र और उनमें व्यभिचारहै
क्योंकि समवायितावच्छेदक सूत्रत्व गोवालत्व
ऊर्णत्व इन धर्मों में से कोई भी धर्म दोनों में नहीं
रहता है इससे समवायिता वच्छेदक धर्मसे एकके
आरम्भक सूत्र गोवालादि सजातीय नहीं है यदि
कहो कि वह रस्सी सूत्रों और गोवालोंसे भिन्न
उनका कार्य नहीं है किन्तु उन्हीं का रूपान्तर
है तव तो पटादि भी तन्त्वादिकों के रूपान्तरही

नद्वितीयः सर्वस्यसर्वेणसाजात्यान्नियमा नर्थक्यंस्यात् आत्माविद्ययोर्वस्तुत्वेन-साजात्यादस्मदिष्टसिद्धेश्च एतेनाविद्या-त्मनोः संयोगोऽसमवायिकारणमपिव्या ख्यातम् यदुक्तमनेकं समवायिकारणं-कार्यमारभत इति तन्न अणोर्मनसश्च

सिद्ध होंगे अवयवी कोई भी नहीं सिद्ध होगा और द्वितीयपक्ष भी नहीं बन सकता है क्योंकि प्रमेयत्वादि धर्मसे सबके सब सजातीय हो सकते हैं इस से नियम करना व्यर्थ होगा और आत्मा और अविद्या को वस्तुत्व धर्म से सजा-तीय होने से वे आकाश के आरम्भक हो सकेंगे इससे हमारे इष्ट की सिद्धि होगी और इसी से अविद्या और आत्मा का संयोग रूप आकाश का असमवायि कारण ही कहा गया और जो यह कहा है कि अनेक सम-वायि कारण कार्य का आरम्भ करते हैं वह समीचीन नहीं है क्योंकि अणु और मन की

क्रियासमवायिकारणस्यैकत्वेनतदारब्धां ऽऽद्यक्रियायां व्यभिचारात् (उक्तनियम-भंग इत्यर्थः) यदुक्तं यत्कार्यद्रव्यं तत्सं-योगसचिवस्वन्यून परिमाणाऽनेकद्रव्या-रब्धमिति तन्न दीर्घविस्तृतदुकूलारब्ध-रज्जौ व्यभिचारात् नच रज्जुर्नद्रव्यान्त-रमिति वाच्यम् अवयविमात्रविप्लवापत्तेः

क्रियाके समवायि कारण अणु आदिकोंके एक होनेसे उसमें अनेकारम्यत्व नहींहै इससे व्यभि-चार है (अर्थात् उक्त नियम भंग हुआ) और जो यह कहा है कि जो कार्य द्रव्य होता है वह संयोग सहकृत स्वन्यून परिमाण विशिष्ट अनेक द्रव्यों से आरब्ध हुआ होता है वह भी सङ्गत नहीं है क्योंकि यह नियम लम्बे चौड़े एक वस्त्र से बनाई हुई रस्सी में व्यभिचारी है। श०। वह रस्सी वस्त्र से भिन्न उसका कार्य नहीं है किन्तु वस्त्र का रूपान्तर ही है इससे व्यभिचार नहीं है। स०। ऐसे मानने से घटादि भी कपालादिकों के

यत्कार्यद्रव्यं तत् द्रव्यारम्भयमिति व्याप्त्यपेक्षया गौरवाच्च। अथवा उक्तरीत्या परमाणूनांजगदुपादानत्वासम्भवेनजड प्रपञ्चकार्यान्यथानुपपत्या अहमज्ञइत्यनुभवेनच सिद्धायास्सत्वरजस्तमोगुणात्मिकायाः "मायान्तुप्रकृतिंविद्या" दित्यादिश्रुतिबोधितायाःअविद्याऽज्ञान

रूपान्तर ही सिद्ध होंगे अवयवी कोई भी नहीं सिद्ध होगा और जो कार्य द्रव्य है वह द्रव्यारम्भ्य है इस नियम की अपेक्षा से उक्त नियम में गौरव भी है। अथवा उक्त रीति से परमाणुओं को जगत् की कारणता के असम्भव से और जड़ प्रपञ्च रूप कार्य के अन्यथा न बन सकने से और मैं अज्ञहूं इस अज्ञान के अनुभव से सिद्ध हुई सत्वरजस्तमोगुण रूप "माया को जगतका उपादान जाने" इत्यादि श्रुति से वोधनकरी और अविद्या अज्ञानशक्ति आदि अनेक पदवाच्या जो मूल प्रकृति है

शक्त्याद्यनेकपदवाच्याया मूलप्रकृतेरु-
पादानभूताया आत्मादृष्टादिनिमित्तस्य
च सत्वादाकाशानुत्पत्तिहेतोस्सामग्री-
शून्यत्वस्य स्वरूपासिद्धेः उक्तसत्प्रतिप-
क्षबाधाच्च आकाशस्यकार्यत्वं निरवद्यम्
यत्तूक्तमुत्पत्तिमतां तेजः प्रभृतीनां पूर्वोत्त-
रकालयोरप्रकाशप्रकाशौ विशेषौ दृष्टौ

उसको उपादान और आत्मा और अदृ-
ष्टादिकों को निमित्त कारण होनेसे आकाश
की अनुत्पत्ति में जो सामग्रीशून्यत्व हेतु है वह
स्वरूपाऽसिद्ध है और कथित विभक्तत्व हेतुक
अनुमानसे आकाश की अनुत्पत्ति बाधित भी
है इससे आकाशका कार्यत्व निर्दोष है और
जो यह कहा है कि उत्पत्तिवाले तेज आ-
दिकों के पूर्व और उत्तर काल में प्रकाश और
अप्रकाश रूपविशेष देखे हैं और आकाशके
विशेषों के न होनेसे आकाशका प्रागभाव
नहीं है इससे आकाश उत्पन्न नहीं होता है

आकाशस्यपुनः पूर्वोत्तरकालयोर्विशेषाभावात्प्रागभावशून्यत्वं तथाच आकाशोनोत्पद्यते प्रागभावशून्यत्वादात्मवदिति तन्न शब्दाऽनाश्रयत्वाश्रयत्वयोर्विशेषत्वेन प्रागभावशून्यत्वहेतोरसिद्धत्वात् नहि प्रलयेशब्दाश्रयत्वं सम्भवति येन विशेषेण पृथिव्यादिभिन्नत्वं सिद्ध्येत

प्रागभावके न होनेसे जैसा आत्मा है इस अनुमानसे आकाशको अजत्व सिद्ध होता है वह समीचीन नहीं है क्योंकि आकाश के शब्दाऽनाश्रयत्व और शब्दाश्रयत्व रूप विशेषों के विद्यमान होनेसे आकाश प्रागभाव शून्य नहीं है इससे उक्तानुमानमें जो प्रागभावशून्यत्व हेतु है वह स्वरूपाऽसिद्ध है और प्रलयकाल में आकाशमें शब्दाश्रयत्व नहीं होसकता जिस विशेष से आकाशपृथिव्यादिकों से विजातीय सिद्ध होवे । और प्रलयकाल में न परमाणु थे न आकाश था इत्यादि

"नासीद्रजोनोव्योमापरोयदि" त्यादि श्रुत्यापि प्रलये पृथिव्यादिभिन्नाकाशाभावसिद्धिः नन्वाकाशाभावेकाठिन्यं-स्यादिति चेत्सुशिक्षितोयं नैयायिक तनयः नह्याकाशाभावस्तद्धर्मोवा काठिन्यं किन्तु मूर्तद्रव्यविशेषस्तद्धर्मो वा काठिन्यं तस्यप्रलयेऽभावादिति। यदप्युक्तमाकाशो नोत्पद्यते विभुत्वादात्मवदिति

श्रुतिओं से भी प्रलय में आकाश का अभाव सिद्ध होता है। श०। प्रलय में यदि आकाश न मानोंगे तो सर्वत्र कठिनता होनी चाहिए। स०। वाहरे नैयायिक के वच्चे सम्यक् शिक्षित हुआ है अरे आकाशाभाव वा उसका धर्म कठिनता नहीं है किन्तु मूर्तद्रव्य वा उसका धर्म है और प्रलय में कोई मूर्त द्रव्य रहता नहीं इससे कठिनता का प्रसंग नहीं हो सकता है। और जो यह अनुमान कहा है कि आकाश उत्पन्न नहीं होता है विभु होनेसे जैसा आत्मा है

तदसङ्गतम् सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगस्य विभुत्वस्य निर्गुणात्मन्यसम्भवेन दृष्टान्तासिद्धेः संयोगस्य सावयवत्वनियतस्याऽजत्वसाध्य विरुद्धतापत्तेश्च स्वरूपोपचयमहत्वस्य च परिमाणविशेषस्य त्वयाऽनभ्युपगमात् अभ्युपगमेवा निर्गुणात्मन्यसत्वेन दृष्टान्तासिद्धेः नाहंविभुरिति

वह भी असङ्गत है क्योंकि सर्व मूर्त द्रव्योंसे संयोग रूप विभुत्व को गुण रूप होनेसे निर्गुण आत्मा में वह रह नहीं सकता है इससे उक्त अनुमान का दृष्टान्त असिद्ध है और "जो संयोगाश्रय है वह सावयव है और जो सावयव है वह अज नहीं है" इन नियमोंसे अजत्व साध्यक संयोगरूप विभुत्व हेतु विरुद्ध है और स्वरूप के उपचय रूप अर्थात् परिमाण विशेष रूप महत्व को आप मानते नहीं हो और यदि मानों भी तो वह निर्गुण आत्मा में रह नहीं सकता है इससे उक्तानुमान दृष्टान्तासिद्ध है और मैं विभु नहीं हूं

प्रतीति विरोधेन दृष्टान्ताऽसिद्धेश्च "ज्यायानाकाशादि" त्यागमवाधाच्च ननु क्वचिदाकाशसाम्यमपि श्रुतमिति चेन्न तस्य इषुरिव सविता धावतीतिवत् आत्मनो निरतिशयमहत्व प्रतिपादनायेोपपत्तेः । नच पूर्वोत्तर विरोधः

इस प्रतीति के साथ विरोध होनेसे आत्मामें विभुत्व नहीं है इससे भी उक्त दोष है और आत्मा को आकाश के तुल्य मानना आत्मा आकाश से वड़ा है इस श्रुति से वाधित है। श०। किसी श्रुति आत्मा को आकाश के तुल्य भी कहा है। स०। जैसे सूर्य तीर के सदृश दौड़ता है इस वाक्य का सूर्य के अति शीघ्र गामित्व में तात्पर्य है ऐसे ही आकाश की तुल्यता कहने वाली श्रुति का आत्मा के निरतिशय महत्व में तात्पर्य है। श० पूर्व आपने कहा कि आत्मा में महत्व नहीं है और अब निरतिशय महत्व कहते हो इससे तुम्हारा पूर्वोत्तर कथन विरुद्ध है

यौक्तिकवैदिकमतयोर्वैषम्यात् । यत्पुनरुक्तम् अस्पर्शिद्रव्यत्वात् निरवयवद्रव्यत्वाच्च आकाशोनोत्पद्यते आत्मवदिति तदप्ययुक्तम् । पञ्चीकरणादस्पर्शित्वाऽसिद्धेः द्रव्यत्वजातेर्निर्गुणात्मन्यऽभावेन दृष्टान्ताऽसिद्धेश्च कार्यद्रव्यत्वान्निरवयवद्रव्यत्वासिद्धेः आकाशोऽनित्यः

स० । यौक्तिक और वैदिकमतों को विलक्षण होनेसे यौक्तिक मत से महत्व का अभाव और वैदिक से महत्व कहा है इससे उक्त दोष नहीं है और जो यह कहा है कि आकाश उत्पन्न नहीं होता है स्पर्श शून्य द्रव्य होनेसे और निरवयव द्रव्य होनेसे जैसा आत्मा है वह भी असंगत है क्योंकि आकाश को पञ्चीकृत होने से स्पर्श शून्यत्व असिद्ध है निर्द्धर्मिक आत्मा में द्रव्यत्व जाति का अभाव होनेसे दृष्टान्त असिद्ध है और आकाश को कार्य द्रव्य होनेसे निरवयव द्रव्यत्व असिद्ध है और आकाश अनित्य है

स्वसमानसत्ताकगुणवत्वादनित्यगुणाश्र-यत्वाद्वा घटवत् निर्गुणात्मनि गुणाश्र-यत्वाऽभावेन न व्यभिचारः कल्पितगु-णवत्त्वेपि स्वसमानसत्ताकगुणाश्रयत्वा-भावात् नचाऽप्रयोजकता यदि धर्मि-विकारोनस्यात्तर्हि गुणनाशोपि नस्यादि-त्यनुकूलतर्कस्यविद्यमानत्वादितिदिक् *

स्वसमानसत्ताक गुणवाला और अनित्य गुणाश्रय होनेसे जैसा घट है इस अनुमान से आकाश की अनुत्पत्ति बाधित है और निर्गुण आत्मा में गुणाश्रयत्व के न होनेसे उक्तानुमान व्यभिचारी नहीं है यद्यपि आत्मा में कल्पित गुण हैं परन्तु आत्मा के समानसत्तावाले गुण नहीं है। और उक्तानुमान व्यभिचारशङ्का निवर्त्तक तर्क शून्य नहीं है क्योंकि यदि आ-काशरूप धर्मी कार्य न हो तो उसके गुणका नाश भी न होना चाहिए यह तर्क विद्यमान है यह आकाश के अजत्व खण्डन का मार्ग है *

यत्तु रामानुजेनोत्प्रेक्षितं जीवस्येश्वरांश-त्वमणुत्वं चिद्रूपत्वं गुणिव्यतिरिक्तदेश-व्यापिज्ञानगुणवत्वञ्चेति तदसत् निर-वयवयोस्तयोरंशांशित्वाऽसम्भवात् किं-चेश्वरस्यांशित्वे देवदत्तवत् स्वांशदुःखे-र्दुखित्वं सावयवत्वेनाऽनित्यत्वञ्च स्यात् तथा जीवस्यांशत्वे जन्यत्वेनाऽनित्यत्वं

और जो रामानुज ने यह कल्पना करी है कि जीव परमेश्वर का अंश परमाणुरूप चिद्रूप और गुणीसे भिन्न देशमें प्राप्त होने वाले ज्ञानरूप गुण का आश्रय है वह मिथ्या है क्योंकि निरवयव जीव निरवयव ईश्वर का अंश अर्थात् अवयव नहीं हो सकता है और यदि मानोगे तो जैसे देवदत्त अपने हस्त पादादि अंशों के दुःखसे दुःखी होता है ऐसे ही ईश्वर भी जीव रूप अपने अंशों के दुःखसे दुःखी और पटादिकों के तुल्य अंशों वाला होनेसे अनित्य होना चाहिए और कपालादिकों के तुल्य अंशरूप होनेसे जीव जन्य मानना होगा

तेनच मोक्षशास्त्रस्याऽऽनर्थक्यं स्यात् ननु जीवस्याणुत्वान्नानित्यत्वमिति चेन्न अणोरप्यनित्यत्वस्य परमाणुविचारप्रकरणे प्रदर्शितत्वात् नन्वस्तु घटाकाशमहाकाशयोरिव तयोरंशांशित्वमिति चेन्न तयोरौपाधिकत्वेनांऽशांशित्वयोरप्यौपाधिकत्वापत्तेः नचेष्टापत्तिः

और उत्पत्ति वाला होनेसे अनित्य होगा इससे मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे क्योंकि जब जीव नष्ट हो गया तो मुक्ति किसकी होगी। श०। जैसे द्यणुक का अंश हुआ भी परमाणु जन्य और अनित्य नहीं होता है ऐसे जीव भी अणुरूप होनेसे जन्य और अनित्य नहीं है। स०। परमाणु विचार प्रकरणमें हम अणुको भी अनित्यत्व दिखा चुके हैं। श०। घटाकाश और महाकाश के तुल्य जीव और ईश्वर का अंशांशिभाव होनेसे कथित दोष नहीं है। स०। जैसे घटाकाश और महाकाश औपाधिक हैं

जीवेशयोरभेदप्रसङ्गात् किञ्च जीवस्याणुत्वे विभिन्नदेशस्थकरद्वयांगुलिद्वये युगपज्जायमानक्रियानुपपत्तिः सर्वाङ्गव्यापिसुखाद्यनुपलब्धिप्रसङ्गश्च स्यात्

ऐसे ही अशांशिभावको भी औपाधिकत्व का प्रसंग होगा और इसका आप स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि यदि ऐसे मानोंगे तो जैसे घटाकाशादिकोंको औपाधिक होनेसे वस्तुतः आकाश एक है ऐसे ही अंशांशिभाव को औपाधिक होने से जीव और ईश्वरके अभेद का प्रसंग होगा। और जीव को अणु मानने से विभिन्न देशों में स्थित दोनों हाथों की दो अंगुलिओं में एक काल में उत्पन्न हुई क्रिया की अनुपपत्ति और सारे शरीर में होने वाले सुखादिकों की प्रतीति के अभाव का प्रसङ्ग होगा क्योंकि जितने देश में चेतन रहेगा उतने ही देश में उसका कार्य होगा और जीव चेतन अणुरूप होनेसे एक काल में दोनों हाथों वा सारे शरीर में रह नहीं सकताहै।

ननु जीवस्याणुत्वेपि तदीयज्ञानगुणस्य व्यापित्वेन सर्वाङ्गव्यापिसुखाद्युपलब्धि-सम्भवइति चेन्न ज्ञानं न गुणिव्यतिरिक्तदेशव्यापि गुणत्वाद्रूपादिवदित्यनुमानेन तस्य गुण्यधिकदेशव्यापित्वबाधात् नच प्रभायां व्यभिचारः रूपाद्याश्रयत्वेन तस्या द्रव्यत्वात् प्रभाहिनास्म

श० । जीव को अणुरूप होनेसे भी उसका ज्ञानरूप गुण सारे शरीर में व्याप्त है इससे उक्त दोष नहीं होगा । स० । ज्ञान गुणी से भिन्न देश में व्याप्त नहीं हो सकता गुण होनेसे जैसे रूपादि हैं इस अनुमान से ज्ञान का गुणी से भिन्न देश में व्याप्त होना बाधित है । श० । दीपक का प्रभारूप गुण दीपक से भिन्न गृहादिकों में व्याप्त होता है इससे उक्तानुमान प्रभा में व्यभिचारी है । स० । प्रभा दीपक का गुण नहीं किन्तु द्रव्य है, रूपादि गुणों का आश्रय होनेसे प्रभा दीपक का परिणामरूप द्रव्य है

दीपादेःपरिणामोवा विजातीयसंयोग-
सचिवैर्दीपाद्यवयवैरारब्धं द्रव्यान्तरमेव
वा अतएव निबिडावयवंहितेजोद्रव्यंप्र-
दीपः प्रविरलावयवन्तु तेजोद्रव्यमेव
प्रभेति प्राहुराचार्य्यश्रीचरणाः। ननु गुण
स्सन्नपि गन्धो गुणिनमनाश्रित्य वर्त्ततएव
कथमन्यथा नासिकापुटमननुगताना-
मपि चम्पककुसुमादीनांसौरभमनुभूये-
त अतोनैकान्तिकमुक्तमनुमानमिति चेद्

अथवा विलक्षण संयोग सहकृत दीपक के
अवयवों से उत्पन्न हुआ द्रव्यान्तर है इस ही
अभिप्राय से परम पूजनीय श्रीमदाचार्यस्वामी
जी ने यह कहा है कि सघन अवयवों वाला
तेजोरूप द्रव्य दीपक और विरले अवयवों वाला
तेजो द्रव्य ही प्रभा है। श०। गुण हुआ भी गन्ध
गुणी से भिन्न देश में व्याप्त होता है नहीं तो
दूर पड़े चम्पे के फूलों के सुगन्ध का अनुभव
कैसे होवे इससे उक्तानुमान व्यभिचारी है।

भ्रान्तोसि गुणिनमपहायाऽपसरन्हि ग-न्धो युतसिद्धत्वात् क्रियाश्रयत्वाच्च गुणत्वादेव हीयेत किन्तर्हि तदाश्रयाः कुसुमाद्यवयवाएव घ्राणमनुगतास्तम-नुभावयन्ति नच तर्हि कुसुमादीनाम्

स०। यह तुम्हारा कथन भ्रम से है क्योंकि जो जिससे अलग होकर वर्तमान होताहै वह उसका गुण नहीं होता है जैसे घट मठ का गुण नहीं है ऐसे ही यदि गन्ध गुणी से भिन्न देश में वर्तमान होगा तो गुण ही नहीं हो सकेगा और गुणी से भिन्न देश में जाने वाला गंध क्रिया का आश्रय मानना होगा नहीं तो नासिकादि देशमें कैसे जा सकेगा और जो क्रिया का आश्रय होता है वह गुण नहीं होता है किन्तु द्रव्य होता है इससे भी गन्ध गुण नहीं हो सकेगा इससे यह मानना चाहिए कि गन्ध के आश्रय दूरस्थ पुष्पों के अवयव वायु की सहायता से आकर घ्राण से संयुक्त होतेहैं इससे गन्ध का अनुभव होता है। शंका। पुष्पादिकों के

अवयवक्षयेण कर्पूरादिवत्परिमाणन्यून तास्यादिति वाच्यं वृक्षस्थानांतेषामवय- वान्तराऽऽविर्भावेन परिमाणन्यूनाऽभावो पपत्तेः। अन्येषान्तुतेषां तथादृष्टत्वेनेष्ट त्वात् । पुष्पादीनांकर्पूरवैलक्षिण्यमपि

अवयव का क्षय होनेसे कर्पूरादिक के सदृश उसका परिमाणको न्यूनता होना चाहिए। स०। वृक्षों में स्थित पुष्पादि के जितने अवयव निकल आतेहैं उतने और उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं इससे पुष्पादि के परिमाणादिकों की न्यूनता नहीं होती है और कर्पूरादिकों में अन्य अवयवों का प्रवेश नहीं होता है इससे उनके परिमा- णादि न्यून हो जाते हैं और अन्य पुष्पादिकों के अवयवक्षय रोज २ देखनेसे उसका न्यून परि- माण होना इष्टही है और पुष्पादिकों के कर्पू- रादिकों से किंचिद्वैलक्षिण्य है वे कारण के विलक्षणता से है और कर्पूर कृत्रिम कुसम अकृ- त्रिम है इससे उसके विलक्षणता को जान लेना

कारणवैलक्षिण्यादवगन्तव्यं । किंचात्र ज्ञानस्वरूपस्य जीवस्य ज्ञानगुणत्वं वदन्वादी प्रष्टव्यः किं गुणभूतज्ञानस्य गुणिभूतज्ञानात् भिन्नत्वं ? उत अभिन्नत्वं ? अथवा भिन्नाऽभिन्नत्वं ? नाद्यः भिन्नस्य तस्य शरीरवत् गुणत्वाऽसम्भवात् न-द्वितीयः ज्ञानस्य जीवस्वरूपत्वेन त-द्गुणत्वाऽयोगात् नतृतीयः विरोधात्

और यह ज्ञान स्वरूप जीव को ज्ञान गुण कहनेवाले वादियों से यह पूछना चाहिए कि गुणरूप ज्ञानको गुणिभूत ज्ञानसे भिन्न मानते हो ? वा अभिन्न अथवा भिन्नाऽभिन्न ? प्रथम पक्ष तो वनता नहीं क्योंकि गुणीसे भिन्न ज्ञान को शरीर के सदृश गुणत्व न होसकनेसे। जीव का स्वरूप होनेसे ज्ञान उसका गुण नहीं होसकता है क्योंकि जो जिसका स्वरूप होता है वह उसका गुण नहीं होसकता है घट घटका गुण नहीं है इससे द्वितीयपक्ष असङ्गत है और तृतीयपक्ष भी समीचीन नहीं है

ननु व्यापिज्ञानस्यगुणत्वाऽभावेऽपिमठा-
न्तस्थप्रदीपवद्दीपस्थानीयधर्म्मिभूतचि-
द्रूपजीवस्य प्रविरलाऽवयवरूप प्रभा-
स्थानीयधर्म्मभूतव्यापिज्ञानद्वारा देहे-
व्याप्यवर्त्तमानत्वात्सर्वाङ्गव्यापिशीताद्यु-
पलब्धिसम्भवइतिचेन्न अणुपरिमाणस्य
जीवस्याऽनन्तागन्तुकज्ञानाऽवयवकल्पने

क्योंकि एक ज्ञानवस्तु में भिन्नत्व और अभि-
न्नत्व के परस्पर विरोध होने से । शं० । देह-
व्यापिज्ञान को गुणत्व न होतो भी जैसे दीपक
गृह के एक देश में स्थित हुआ भी अपने
प्रभा रूप से सारे गृह में व्याप्त होता है ऐसाही
दीपस्थानीय धर्म्मिरूप चिद्रूप जीव के फैला
हुआ सूक्ष्मावयवरूप प्रभास्थानीय धर्म्मरूप
व्यापिज्ञानद्वारा देहमें सर्वत्र व्याप्य विद्यमान
होनेसे सर्वाङ्ग व्यापि शीतादिकों का ज्ञान सम्भव
है।स०। अणुपरिमाण जीव के अनन्त और आग-
न्तुक ज्ञानावयव कल्पनामें कोई प्रमणा नहीं है

प्रमाणाऽभावात् एकस्यैव ज्ञानस्य ध-
र्म्मिरूपत्वं धर्म्मरूपत्वं संकोचविकास-
वत्वं नित्यत्वंचेत्याद्यनन्ताऽसंबद्धकल्प-
नस्योन्मत्तप्रलापकल्पत्वात् उक्तरीत्याजी
वेश्वरयोरनित्यत्व प्रसंगेन तव माध्यमि
कशिरोमणित्वापत्ते श्चेत्यलमतिप्रपंचे-
न दग्धाङ्गमताभासप्रदर्शनेन * ॥ यदु-
क्तमात्माद्विविधः जीवात्मा परमात्माचेति

और एकही ज्ञानके धर्म्मिरूपत्व धर्म्मरूपत्व संकोचविकासशीलत्व और नित्यत्व इत्यादि अनंत असंगत प्रलाप उन्मत्त प्रलाप के तुल्य है और उक्तरीति से जीव और ईश्वर को अनित्यत्वादि दोषके प्रसङ्ग होनेसे तुमको शून्यवादियों का शिरोमणि होना पड़ेगा अब इन दग्ध देहियों के मताभास को बहुत न फैलाकर यहीं समाप्त करता हूं * और जो यह कहाहै कि आत्मा दो प्रकार का है एक जीवात्मा दूसरा परमात्मा

तदयुक्तम् आत्मा एकः विभुत्वादाकाशवदित्यनुमानबाधात् नचाऽप्रयोजकता आकाशादीनामपि नानात्वापत्तेः। एतेन विभुजीवात्मनानात्वमपि निरस्तम् किञ्च आत्मनो नानात्वे विभुत्वेचाऽभ्युपगम्यमाने सुखदुःखसाङ्कर्य्यप्रसङ्गः आत्मनःसर्वगतत्वेन सर्वात्म-

वह अयुक्त है क्योंकि आत्मा एक है विभु होनेसे जैसा आकाश है इस अनुमानसे आत्माका नानात्व बाधित है और कथित हेतु तर्क शून्य नहीं है क्योंकि आकाशादिकों को नानात्व प्रसङ्गरूप तर्क विद्यमान है और इसही से विभु जीवात्मा को जो नाना (अनेक) मानना है वह भी खण्डित हुआ और आत्मा को नाना और विभु माननेसे सुख दुःख का साङ्कर्य्य प्रसङ्ग अर्थात् एक को सुख होनेसे सब को सुख और एक को दुःख होनेसे सब को दुःखका प्रसङ्ग होगा क्योंकि सब आत्माओं को सर्वगत होनेसे सबके

सन्निधावुत्पद्यमानं सुखदुःखफलमस्यैव नाऽन्यस्येत्यत्र नियामकाऽभावात् ननु तत्तदात्ममनस्संयोगस्य नियामकत्वमिति चेन्न सर्वात्मसन्निधौ वर्तमानम्मनो यदेकेनात्मनासंयुज्यते तदा नाऽऽत्मान्तरैरित्यत्र नियामकाऽभावेन तत्तदात्ममनस्संयोगस्य नियामकत्वाऽयोगात् ननु यदाऽऽत्माऽदृष्टकृतो यो मनस्संयोगः

सन्निधान में उत्पन्न हुआ सुख दुःखरूप फल एक आत्मा का हो दूसरे का न हो इसमें कोई नियामक नहीं है। श०। तिस तिस आत्मा और मन का संयोग नियामक है। स०। सब आत्माओं के सन्निधानमें वर्तमान मन जिस काल में एक आत्मा से संयुक्त होता है उस काल में अन्य आत्माओंसे उसका संयोग नहीं होता है इसमें किसी नियामक के न होनेसे तत्तदात्ममनस्संयोग नियामक नहीं हो सकता है। श०। जो मनस्संयोग जिस आत्मा के अदृष्ट से उत्पन्न होता है

सतदात्मनएव नान्येषामित्यदृष्टस्य निया मकत्वमितिचेन्न सर्वात्मसन्निधावुत्पद्यमानं धर्माधर्मलक्षणमदृष्टं अस्यैव नान्येषामित्यत्रापि नियामकाऽभावेनाऽदृष्टस्य नियामकत्वाऽयोगात् ननु रागादीनामदृष्टनियामकत्वमितिचेन्न तेषामप्याऽऽत्ममनस्संयोगजन्यत्वेनोक्तदोषस्य

वह उसही आत्मा से होता है अन्यों से नहीं इस रीति से अदृष्ट संयोग का नियामक हो सकता है। स०। सब आत्माओं के सन्निधान में उत्पन्न हुआ धर्माऽधर्मरूप अदृष्ट एक ही आत्माका है दूसरों का नहीं इसमें किसी नियामक के न होनेसे अदृष्ट को भी नियामकता नहीं हो सकती है। श०। जिसकी इच्छा से जो कर्म होता है उससे उत्पन्न हुए अदृष्ट उसही के होते हैं दूसरों के नहीं इस रीति से इच्छादि अदृष्टों के नियामक हो सकतेहैं। स०। इच्छादिकों को भी आत्ममनः संयोग से उत्पन्न हुए होने से

तुल्यत्वात् ननु तत्तच्छरीराऽवच्छिन्ना-
त्ममनस्संयोगस्य रागादिनियामकत्वमि-
तिचेन्न सर्वात्मसन्निधावुत्पद्यमानंशरी-
रमस्यैव नान्येषामित्यत्र नियामकाऽ-
भावेन तत्तच्छरीराऽवच्छिन्नात्ममनस्सं-
योगस्यापि रागादिनियामकत्वायोगात्

कथित दोष तुल्य है क्योंकि इच्छादिकों के
जनक मनस्संयोग को सब आत्माओं के साथ तुल्य
होनेसे एकही आत्मा में इच्छा हो दूसरे में न हो
इसमें कोई नियामक नहीं है। श०। जिस आत्मा
के शरीर में आत्मा से मन का संयोग होता है
वह उसही आत्मा में इच्छादिकों को उत्पन्न कर्ता है
इस रीति से भिन्न भिन्न शरीरों में होने वाला
आत्ममनस्संयोग इच्छादिकों का नियामक होस-
कताहै। स०सब आत्माओं के सन्निधान में उत्पन्न
हुआ शरीर एकही आत्मा का हो दूसरे का न हो
इसमें किसी नियामक के न होनेसे उक्त संयोग
की इच्छादिकों का नियामक नहीं हो सकता है

तस्मादात्मनानात्वविभुत्ववादिनां सुखदुःखसाङ्कर्यं दुर्वारमितिसिद्धम् एतेनाऽन्त्यजशिष्येण (जकारोऽन्तेयस्येति व्युत्पत्यारामानुजबोधकोऽन्त्यजशब्दः) विजयराघवाचारिणा यत्प्रलपितमेतादृशबहुनर्थभिया जीवस्य स्वाभाविकभेदः स्वीकृतइति तन्निरस्तम् "भक्षितेपि लशुने नरोगशान्तिरितिन्यायात्"

इससे जो लोग आत्मा को नाना (अनेक) और विभु मानते हैं उनके मत में सुख दुःख सांकर्य दोष दुर्निवार है। और इन ही युक्तिओं से रामानुज के शिष्य विजयराघवाचारी का जो यह कथन है कि सुखादि साङ्कर्य्यादि दोषों से हम लोगोंने जीवका स्वाभाविक भेद माना है वह भी खण्डित हुआ जानना क्योंकि जैसे किसी ने रोगकी निवृत्ति के अर्थ लशुन भक्षण रूप निषिद्ध कार्य भी किया परन्तु रोगकी निवृत्ति न हुई ऐसे ही उक्त दोषों की निवृत्ति के अर्थ आचारीओंने वेद विरुद्ध जीव का

औपनिषदानान्तु नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त-
स्वरू पस्य कर्तृत्वादिशून्यस्य परिपूर्ण-
स्य आत्मनोव्यावहारिकं परिच्छिन्नत्वं-
पारमा र्थिकन्त्वऽपरिच्छिन्नत्व मित्य-
नवद्यम् ॥ * ॥ अस्मच्छास्त्रं युक्तियु-
क्तं युक्तिहीनन्तु वैदिकम् । इतिमोहे-
नजल्पन्ति तेषांमोहोत्रसूचितः ॥ १ ॥

स्वाभाविक भेद भी माना परन्तु उन दोषों की निवृत्ति न हुई और वेदान्तिओं के मतमें नित्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप मुक्त कर्तृत्वादि धर्मों से रहित और परिपूर्ण आत्माको उपाधि सम्बन्ध से परिछिन्नत्व है और स्वभावसे अपरिच्छिन्नत्व है इस से कोई दोष नहीं है॥ * ॥ और जो तार्किक लोग अर्थात् युक्तिसे पदार्थ तत्व को सिद्ध करने वाले भ्रमसे ऐसे कहते हैं कि हमारा शास्त्र युक्ति युक्त है और वेदान्त शास्त्र युक्ति रहितहै उनके भ्रमका इस ग्रन्थमें प्रकाश किया है अर्थात् उन युक्तिओं को आभास करके उनका भ्रम सिद्ध किया है॥१॥

ग्रन्थोयं ब्रह्मविद्यायाः पादपद्मेसमर्पितः । ग्रन्थपुष्पोपहारेण प्रीताभवतु खेचरी ॥ २ ॥ दक्षिणेद्रविडेदेशे शारदापत्तनेशुभे । ग्रामेबृहत्तडागेतु ब्रह्मण्यकुलसङ्कुले ॥ ३ ॥ सुप्रसन्नमुखाम्भोजपार्वतीगर्भपङ्कजात् । शान्त्यादि गुण पूर्णस्य वीर्याच्छङ्करशास्त्रिणः ॥ ४ ॥ जातः सहस्रनामाख्योमुमुक्षुः पुरुषोत्तमः । गुरुशुश्रूषयापश्चाद्येनवैमोक्षहेतुकी ॥ ५ ॥

यह तार्किकमोहप्रकाश नामक ग्रंथ ब्रह्मविद्याके चरणकमलमें अर्पण किया है इस ग्रंथरूप पुष्पकी भेंट से खेचरी भगवती प्रसन्ना होवे ॥ २ ॥ दक्षिण द्रविड़देश के पालघाट तासील में ब्राह्मणोंसे व्याप्त पेरुंकोल ग्राममें ॥ ३ ॥ सुप्रसन्न है मुख कमल जिन का ऐसी पार्वती जी के गर्भ कमलसे शान्त्यादि गुणोंसे पूर्ण शंकर शास्त्रीजी के वीर्य से ॥ ४ ॥ उत्पन्न होकर जिस पुरुष श्रेष्ठ सहस्रनाम नामक मुमुक्षुने गुरु सेवासे मोक्ष की जनक ॥ ५ ॥

वेदान्ताऽऽगमविज्ञेभ्यः शिवरूपेभ्यएव-
च । श्रीरामानन्दनाथेभ्यः प्राप्तादी-
क्षापराध्रुवा ॥ ६ ॥ सर्वतन्त्रस्वतन्त्रेभ्यः
कृतपुण्यफलात्मिके । गणपत्यभिधा-
नेभ्यो दीक्षितेभ्योऽमृतप्रदे ॥ ७ ॥ वेदा-
न्तयोगजेविद्ये प्राप्तेपूज्येभ्यत्रात्मनः ।
श्रीमच्छ्रीत्यागराजाख्यैर्दीक्षितैश्शास्त्र-
मूर्त्तिभिः ॥८॥ वेदान्तजा पुनर्विद्यापूरि-
ताहृदयाम्बुजे । सोयं हिमालयेऽद्यापि

उत्तम दीक्षा वेदान्त और तन्त्रशास्त्रके विज्ञ
शिव रूप श्री रामानन्दनाथ जी से पाई ॥६॥
और अपने पूज्य सब शास्त्रोंमें स्वतन्त्र (सब
शास्त्रोंमें ग्रन्थ बनावने में चतुर) श्री गणपति
दीक्षित जी से पूर्व पुण्योंका फलरूप और अनर्थ
निवृत्तिरानन्दावाप्ति रूप मोक्षके देने वाली ॥७॥
वेदान्त और योग विद्या पाई । और शास्त्रकी
मूर्ति रूप श्रीत्यागराज दीक्षित जीने ॥८॥ फिर
जिसके हृदय कमलमें वेदान्त विद्या पूर्ण करी

नहि निषेधवाक्योपलब्धिंविना प्रसिद्ध-
स्यप्रमाणसिद्धस्य निषेधोभवितुमर्हति अ-
तिप्रसंगात् मनु व्यास जैमिनि पाणि-
निपतञ्जलिप्रभृतिमहर्षयः वेदशब्दप-
र्य्यायश्रुतिछन्दःप्रभृतिशब्दैः ब्राह्मणवा-
क्यान्युदाहृत्यव्यवहरन्तो ब्राह्मणानां वे
दत्वमवबोधयन्ति।जनकयाज्ञवल्क्यादि

और मनु व्यास जैमिनि पाणिनि पतञ्जलि
प्रभृति महर्षि लोग भी वेद शब्द के पर्याय
श्रुति और छन्द आदि शब्दोंसे निज ग्रन्थों
में ब्राह्मणभाग को कहते हुए उक्तार्थ को ही
पुष्ट करते हैं और जो यह कहा है कि ब्राह्मण
भाग में जनक याज्ञवल्क्यादि संवाद रूप इति-
हास के विद्यमान होनेसे वह वेद नहीं हो
सकता है। वह कथन अकिंचित्कर है क्योंकि
मंत्र भाग में भी वृत्रासुर वधादि रूप इतिहास
के विद्यमान होनेसे तुम्हारे मतानुसार मंत्र
भाग को भी वेदत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा।

संवादरूपेतिहासोपन्यासदर्शनाद्ब्राह्मणभागस्याऽवेदत्वमिति च युक्तेः "मंत्रोहीनःस्वरतो वर्णतोवा मिथ्याप्रयुक्तोनतमर्थमाह । सवाग्वज्रोयजमानंहिनस्तियथेन्द्रशत्रुःस्वरतोपराधात्" इतिपाणिनीयशिक्षावचनेनाऽऽभासत्वंस्पष्टीकृतं ।

नवीनोंकी शंका। मंत्र भाग में इतिहास बोधक मंत्र कोई भी नहीं है अगर कोई मंत्र पूर्वाचार्यकृत भाष्य सहित दिखाया हो तो भी उसकी हम नहीं मान सकते हैं क्योंकि उन भाष्यकारों की बुद्धि में कुछ फरक था उससे वह ठीक नहीं है हमार स्वामि जी ने जो अर्थ लिखा है वह ही ठीक है इससे मंत्र भाग में कथा सिद्ध नहीं हो सकेगी। सिद्धांति समाधान। यह आप का ख्याल ठीक नहीं है क्योंकि वेदाङ्ग पाणिनिमहर्षिकृत शिक्षा ग्रंथ में "मंत्रोहीनःस्वरतोवर्णतोवामिथ्याप्रयुक्तोनत मर्थमाह। सवाग्वज्रोयजमानं हिनस्तियथेन्द्रशत्रुःस्वरतोपराधात्" ऐसा लिखा है

वृत्त्रासुरवधादीनामृग्वेदादिमंत्रभागेस्प
ष्टत्वात् अन्यथावेदांगशिक्षादिग्रन्थाना
मप्रामाण्यापत्तेः आधुनिकमतानुरोधेन

इसका अर्थ भी स्पष्टही है कि मंत्र स्वर औ वर्णसे रहित होकर उच्चारण किया जावे तो सो मिथ्याप्रयुक्त है और सो यजमान उस फलको प्राप्त भी न होगा उलटा वह उच्चारित वाणी रूप वज्र यजमानको हिंसा करता है जैसा इन्द्र शत्रु स्वर के अपराध से अर्थात् उलटा स्वर उच्चारण करनेसे नाशको प्राप्त भया है यह उदाहरण वेद में कथा न होता हो तो असंगत होगा और मैं उस जगह की वाक्य भी थोड़ी सी लिखता हूं "त्वष्टाहतपुत्रो वीन्द्रꣳसोममा-हरत्" ऐसा उपक्रम करके "यथेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्वत-स्मादस्य इंद्रःशत्रुरभत्ससंभवन्नग्नीषोमावभिस-मभवत्सइषुमात्रमिषुमात्रंविष्वङ्ङवर्धत" इस भांति आगे बहुत लिखा है। इस जगह में अनुदात्त और स्वरित स्वर के व्यत्यय होनेसे इंद्रशत्रुः

मंत्रभागे इतिहासादीनांविद्यमानत्वेपि न कापिहानिः तस्यईश्वरोक्तत्वाऽभावात्। अस्माकंतु पारमार्थिकजीवस्वरूपाऽस्मिन्नपरमेश्वरस्य "पराऽस्यशक्तिर्विविधेव

इस पद के समास व्यत्यय हो गया है इंद्रस्य शत्रुः इंद्रशत्रुः ऐसा होना था उलटा इंद्रःशत्रुर्यस्य सः ऐसा वहुव्रीही समास हो गया है यह उदाहृत मंत्र तैत्तरीय संहिता के दूसरा कांड का है और ऋग्वेद अ० ८ अ० ४ मं० १० सूक्त ८६ में इन्द्र इन्द्राणी और वृषाकपी का इतिहास प्रसिद्ध है और तैत्तरीय शाखा को प्रतिकूल होनेसे अप्रमाण भी नहि कह सकते हो क्योंकि उसके "सहनाववतु" इत्यादि मंत्र को उत्तम जान कर शान्ति के अर्थ आप के स्वामी ने लिख दिया है इससे यह सिद्ध हुआ कि दयानंदकृत अर्थ असंगत है क्योंकि वेदांग के प्रतिकूल है और निरुक्त शब्दों का अनेकार्थ बोधन करने से सब को अनुकूल है और प्राचीन सायनाचार्यादि

श्रूयते स्वाभाविकीज्ञान बलक्रियाच" इ-त्यादिश्रुति सिद्धाऽनाद्यनिर्वचनीयबुद्धि-स्थानीयमायाशक्तौकार्यकरणसंघातादि विशिष्टस्याऽनाद्यनिर्वचनीयस्य बीजांकुर

भाष्य ही ठीक है क्योंकि वह वेदांग और मीमांसा के अनुसारी है और यदि इस शिक्षा वचन को न मानो तो सारे वेदाङ्ग अप्र-माण ही हो जावेंगे क्योंकि एक को आपने न माना दूसरे को दूसरे ने न माना इस भांति सव व्यर्थ हो जायेंगे और तुम्हारे मतानुसार वेदों में उदर पोषक पदार्थ विद्योपदेश के सदृश और जड़ पदार्थ और पश्वादि जीवों के नामधेय के सदृश इतिहास के विद्यमान होने में कुछ हानि भी नहीं मालूम होती है क्योंकि ब्रह्म वि-द्योपदेश महर्षियों के नामधेय उससे कम नहीं हैं और वेद का ईश्वर कर्तृत्व भी सिद्ध नहीं होता है। तथाहि । सिद्धान्ती । वेद किसका वनाया है । नवीन । ईश्वर ने वनाया है । सिद्धान्ती ।

वदावर्त्तमानस्य जतुपिंडे सुवर्णरेणुवत्
बीजे अङ्कुरवच्च प्रलयकाले सूक्ष्मरूपेण
वर्त्तमानस्यैव प्रपंचस्य पुनः सृष्टिकाले उक्त
परमेश्वरस्याऽनिर्वचनीय बुद्धिस्थानीय

प्राण मन और शरीरसे रहित परिपूर्ण निराकार परमेश्वरमें आकाशके सदृश क्रियाके असम्भव होने से उन्हो ने वेद किस तरह बनाया क्योंकि वेद के पढाने से वा लिख देनेसे उनका वनाया सिद्ध हो सकता है वह उक्त ईश्वर में असंभव है नवीन। आपका कथन सत्य है परमेश्वर ने यद्यपि साक्षात्(खुद) अपना आप वेद नहीं वनाया है किन्तु अग्नि वायु और रवि इन ऋषियों के द्वारा वनाया है। सिद्धान्ती। यह आप का कथन ठीक नहीं है क्योंकि उक्त परमेश्वर में क्रिया का होना असम्भव है इससे कोई भी पदार्थ वह साक्षात् अपने आप उत्पन्न नहीं कर सकता है किन्तु किसी न किसी के द्वारा ही सब पदार्थों की उत्पत्ति करता है ऐसा आप को मानना होगा

मायाशक्तौसृज्यमानप्राणिकर्मवशादिद-मिदानीं स्रष्टव्यमित्याकारकवृत्यनन्तरं "हिरगयगर्भस्समवर्त्तताऽग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्" "यो ब्रह्मागांविदधाति

इससे यह नियम सिद्ध नहीं हो सकता कि परमेश्वर ने उक्त ऋषियों के द्वारा वेद वनाया कुरान् वा अन्य ग्रन्थादि दूसरों के द्वारा नहीं वनाया है क्योंकि यह उक्त युक्ति से बाधित है और पुराणादिकों को तुम्हारे मतानुसार वेद होने में कोई भी शंका न रही क्योंकि वे व्यासादि ऋषियों के द्वारा रचित हैं और आप के मतानुसार ईश्वरेछादिकों की सिद्धि नहीं होसकती है यह वात मै तार्किकमोहप्रकाश में लिख चुका हूं और ईश्वर की इच्छा जड़ है वा चेतन है वा उससे भिन्न है वा अभिन्न है इत्यादि विकल्पों को न सह सकने से वन्ध्यापुत्र के तुल्य है उससे वेदादिकों की उत्पत्ति की आशा भी निरर्थक है और उक्त ऋषियों को उत्पत्ति से

पूर्वं योवैवेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इत्यादि श्रुतिसिद्ध.हिरण्यगर्भसृष्टिद्वाराप्रादुर्भावादितिहासादीनां वेदेषु विद्यमानत्वेऽपि नकोपिदोषः । येतावदाधुनिकाः

पहिले विद्यमान ब्राह्मणादि लोग किस वेदके अनुसार कर्म करते थे यदि उन उक्त ऋषियों से पहिले वेद को न मानोगे तो मध्य में उत्पन्न भया हुआ वेद कुरान के तुल्य अप्रमाण ही हो जायगा अगर मानोगे तो उक्त ऋषियों के द्वारा वेद की उत्पत्ति का कथन असंगत होगा और यदि उक्त ऋषियों की उत्पत्ति सब से पहिले मानोगे तो वह संभव नहीं है क्योंकि सृष्टि क्रम से विरुद्ध विना माता पिता के वे कैसे उत्पन्न हो सकेंगे। नवीन। आप क्या शास्त्रको नहीं मानते हो शास्त्रों में उक्त ऋषियों के द्वारा वेदों की उत्पत्ति लिखी है। सिद्धांती। ठीक लिखा होगा परन्तु युक्ति युक्त होतो हम मान सकते हैं नहीं तो नहीं जैसे तुम श्राद्धादिकों को नहीं मानते हो

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदत्वन्नाङ्गीकुर्वन्ति किन्तु मन्त्रात्मकाएव वेदास्तत्प्रतिपाद्या एवधर्मा अनुष्ठेया नेतरे धर्माः तस्मात् श्राद्धमूर्ति पूजनादीनां मन्त्र प्रतिपाद्यत्वा भावेन तेधर्मा नानुष्ठेया इति वदन्ति

और हमको कोई हठ नहीं है और आप लोगों के सदृश किसी मत की पाबन्दीभी नहीं है और उक्त प्रकार से यह सिद्ध हुआ कि वेद में इतिहास के विद्यमान होनेसे आप के सिद्धांत की कुछ हानि नहीं है। नवीन। आप हमारे मत को दोष युक्त दिखाया है आपके मत का क्या हाल है। सिद्धान्ती। हमारे मत में परमेश्वर का "पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते" इत्यादि श्रुति सिद्ध अनादि अनिर्वचनीय और बुद्धि स्थानीय एक माया शक्ती है उस माया शक्ती में सकल कार्य कारण वेदादि विशिष्ट अनादि अनिर्वचनीय बीजांकुर के सदृश पुनः पुनः आवर्त्तमान और प्रलयकाल में बीजों में अंकुर के सदृश

तेऽत्र प्रष्टव्याः के ते यूयमाधुनिकाःश्रुत्ये-
कदेशशरणाःकुतोलोकादस्मदीयधर्मवि
ध्वंसनायसमागताः कथंच युष्माभिरु-
पनयनादिसंस्कारपूर्वक सन्ध्यावन्दन-

सूक्ष्मरूप से वर्त्तमान ही प्रपंच सृष्टिकालमें उक्त परमेश्वर का उक्त बुद्धि स्थानीय माया शक्ति में सृज्यमान प्राणियों के कर्म के अनुसार अब यह सृष्टि करनी चाहिए ऐसी वृत्ति उत्पन्न होती है उससे वाद "हिरण्यगर्भस्समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्" "यो ब्रह्माणं-विदधातिपूर्वं योवैवेदांश्चप्राहिणोतितस्मै" इत्यादि श्रुति सिद्ध हिरण्य गर्भ सृष्टि होती है उनके द्वारा वेदादि सकल पदार्थोंके उत्पन्न होने से वेदों में इतिहासके विद्यमान होने में कुछ दोष नहीं हो सकताहै क्योंकि सबके अनादित्व सिद्ध होनेसे नहो तो असतका उत्पत्तिके प्रसंग होगी और जो आप लोग मन्त्रभाग को ही वेद मानते हो ब्राह्मणभाग को नहीं और मन्त्रों में जो लिखा है

वेदाध्ययनादिधर्माः स्वीकृताः "अष्टमेव र्षे ब्राह्मणमुपनयीत" "अहरहस्सन्ध्यामुपासीत" "स्वाध्यायोध्येतव्य" इत्यादि विधिवाक्यानां मन्त्रात्मकवेदेऽदर्शनात्

वहही करनेके योग्य धर्म है अन्य नहीं इससे मन्त्रभाग में न लिखे होनेसे श्राद्ध और मूर्त्तिपूजनादि न करना चाहिए ऐसा कहतेहो यह आप से पूछा जाता है कि भाई आप वेदके एक भाग को मानने वाले नए कौन हो अर्थात् आप चारौ वर्णको मानते हो वा नहीं? और उन वर्णों के आप भतिर हो वा वाहर? और हमारे धर्मको नष्ट करने के लिये किस लोकसे आए हो अर्थात् आप हम गरीबों की भक्ति याने गंगास्नानादिकों में श्रद्धा के दूर करनेके निमित्त नया विलक्षण मत कहां से लाये हो ? और आप यज्ञोपवीतादि संस्कार पूर्वक सन्ध्यावन्दन और वेदाध्ययनादि धर्मोंको क्योंकर मानते हो? वे तो किसी मन्त्रभागमें करने नहीं लिखे हैं और "अष्टमें वर्षे ब्राह्मणमुपनयीत"

कथंच दयानन्दस्य चतुर्थाश्रमसिद्धिः मंत्रे "ब्रह्मचर्यंसमाप्यगृहीभवेत् गृहाद्वनीभूत्वाप्रव्रजेत्" ब्रह्मचर्यादेवप्रव्रजेत्" इति संन्यासविध्यभावात् एतेन आश्रमान्तराण्यपिव्याख्यातानि कथञ्चयुष्म-

"अहरहः सन्ध्यामुपासीत" "स्वाध्यायोध्येतव्यः" इत्यादि विधिवाक्य तो मन्त्रभाग में नहीं दीखते हैं और आप दयानन्द को संन्यासी कैसे कहते हो? मन्त्रों में तो कहीं संन्यासका विधान नहीं है और ब्रह्मचर्यादि किसी आश्रमका भी विधान नहीं है और मन्त्रभाग में जातकर्म और नामकरणादिकों के विधानके न होनेसे आपके स्वामी दयानन्दने अवैदिक वे संस्कार ब्राह्मणादिकोंके धर्म कैसे कहे? और ब्राह्मणभाग को वेद न मानने से युक्तिकुशल आप लोगों को ऐसे विकल्प क्यों नहीं उत्पन्न होते ? कि मन्त्रभागमें उपनयन संस्कार पूर्वक सन्ध्यावंदनादिकोंमें प्रवृत्त करने वाले विधिवाक्य के न होने से उनमें हमारी प्रवृत्ति कैसे होगी

त्स्वामिनादयानन्देन जातकर्मनामकर-
णादिसंस्कारधर्माणां मन्त्रभागे विध्य-
ऽदर्शनेन ब्राह्मणादीनां अवैदिकास्सं-
स्कारा धर्मतया प्रतिपादिताः कथंच
युक्तिकुशलानां वो बुद्धौ ब्राह्मणभागस्य

वा हुई वा होरही है और प्रवृत्ति के न होने
से हम यवनों के तुल्य क्यों न हो जाएँगे और
हमारे स्वामीने वेदमें न कहे हुए धर्मोंको उप-
देश क्यों किया । और मन्त्रभाग सूचित उप-
नयनादि संस्कारों को कर्तव्य और श्राद्ध मूर्त्ति-
पूजनादिकों को मन्त्रभाग सूचित होनेसे भी
अकर्तव्य कहते हुए आप लोगों को लज्जा क्यों
नहीं आती ? और आप के वेद में वेदाध्ययन
विधायक वाक्य के न होने से वेदाध्ययन रहित
आप लोग वैदिक कैसे हो सकोगे ? और अ-
वैदिक हुए आप आर्य्यधर्मी क्योंकर बनोंगे ?
और हमारे मतमें तो उपनयनादि विधायक
ब्राह्मणभागरूपवेद के वाक्योंको विद्यमान होनेसे

वेदत्वानङ्गीकारे यज्ञोपवीतसंस्कारपूर्व-कसन्ध्यावन्दनादौ प्रवृत्तिजनकविधिवाक्यस्य मन्त्रात्मकवेदेऽसत्वात्कथमस्माक-मुपनयनपूर्वक सन्ध्यावन्दनादौप्रवृत्तिर्भवेत् कथंवा तत्रप्रवृत्तिर्जाता प्रवृत्यभावे

हमको वैदिकत्व सम्यक् हो सकता है । और संस्कारादिकों को ऐसाही करना चाहिए ऐसा न करना चाहिए ऐसी नियम वोधक विधिवाक्य नहो तो उसमें जायमान शंका कैसे निवृत्ति होगी तथाहि प्रथमतो संस्कार करना चाहिए वा संस्कार करो ऐसे विधिवाक्य चाहिए पश्चात् किसको और किस प्रकार और किस वस्तु से करना चाहिए ऐसा आक्षेप होताहै वह आक्षेप यह है:— याने हम आपसे यह पूछते हैं कि सव संस्कार किसको होना चाहिये मनुष्य को वा पशु को? इस संस्कार करने का फल क्या है ? और सृष्टि के आदि में संस्कार किसने किसको किया था ? और किस तरह करना चाहिये ? खड़े हो कर

वा कथमस्माकं यवनतुल्यत्वं न भवेत् कथमस्मत्स्वामिना वेदाऽविहिताधर्मा उपदिष्टा इत्यादिविकल्पसमुदायो नोत्पन्नः कथंच मंत्रभागसूचितानामुपनयनादिसंस्काराणांकर्तव्यत्वं तत्सूचितानां

वा बैठ कर वा चलते चलते ? और पूर्वाभिमुख वा उत्तराभिमुख वा दक्षिणाभिमुख वा पच्छिमाभिमुख वा अधोमुख वा उर्द्धमुख हो कर ? और किस काल में ! प्रातःकाल में वा मध्यान्ह काल वा सायंकाल वा अर्द्धरात्रि में वा अनियत काल में वा खा करके वा न खा करके? और इन संस्कारों को पिता करैगा ? वा माता करैगी ? वा दादा करैगा ! बा दादी वा नाना वा नानी ? कौन करैगा ? और शिखा का स्थान सिर पर कहां होना चाहिये ? सिर के उत्तर भाग में ? वा दक्षिणभाग में ? अथवा पूर्व वा पच्छिमभाग में ! वा मध्यभाग में ? और शिखा की लम्बाई चौड़ाई कितनी होनी चाहिये ?

श्राद्धमूर्तिपूजनादीनामकर्तव्यत्वंच वदन्तोभवन्तो लज्जांन भजन्ते कथञ्च भवतांभवदीयवेदे वेदाध्ययनविध्यऽभावेन वेदाध्ययनरहितानां वेदैकशरणत्वं भवेत् कथञ्च भवतामवैदिकानामार्यधर्मवत्वं

उसके स्थानकी आकृति चतुष्कोण होना चाहिये ? अथवा त्रिकोण वा गोल ? और इस शिखा के धारण करने का फल क्या है ? और जनेऊ धारण करने का क्या प्रयोजन है ? और यह जनेऊ किस चीज का होना चाहिये? सूत का वा रेशम का अथवा ऊन का वा सन का वा मूंज का वा कुशादिकों का ? और जनेऊ की लम्वाई वा मुटाई कितनी होनी चाहिये ? और शरीर के किस भाग में धारण करना चाहिये? सिर में वा कान में वा हाथमें वा गले में अथवा कमर में वा पैर में ? और जनेऊ किसके हाथ का वना हुआ धारण करना चाहिये ? ब्राह्मण के हाथका ? वा क्षत्री वा वैश्य वा शूद्रके हाथका?

भवेत् अस्माकन्तु उपनयनादिविधिवा
क्यानांब्राह्मणात्मकेवेदे विद्यमानत्वाद्वै
दिकत्वं विशिष्टतरम् । किंच संस्कारा-
दीनां कंभावयेत् कथंभावयेत्केनभा-
वयेदितीतिकर्त्तव्यताकांक्षाया मितिकर्त्त-
व्यतानियामकविध्यऽभावे कथमित्थमेव

अथवा मुसल्मानके हाथका वा भंगीके हाथ
का? और मृतक संस्कारमें हवन मृतकके ऊपर क-
रना चाहिये अथवा अगल बगलमें? अगर मृतक
के ऊपर होतो किस अङ्गमें होना चाहिये? पेटमें वा
कटिमें अथवा छातीमें वा हाथमें वा मुखमें वा सिर
में? और अगल बगल होवे तो किस दिशामें?
और मृतकको बैठाकर अथवा खड़ा करके वा सुला
कर फूंकना चाहिये? इन सब ऊपर लिखे हुये आ-
क्षेपोंको जब तक आप सोहनलालके मंत्रोंसे न सिद्ध
करेंगे तब तक यह सब संस्कार वेदोक्त कैसे
कहे जावेंगे। और हमारे मतमें ब्राह्मण और कल्प
सूत्रादिकोंमें इस आक्षेपका परिहार स्पष्ट है।

कर्त्तव्यं नेत्थमिति नियमसिद्धिः कथंवा तत्रजायमानशंकानिवृत्तिर्भवेत् मंत्रेता दृशविध्यऽनुपलंभात् * किंच "अथय-एषोन्तरादित्येहिरण्मयःपुरुषोदृश्यते-हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्स-र्वएवसुवर्णः तस्ययथाकप्यासं पुंडरीकं

और "अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पु-रुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशआप्रणखात् सर्वएव सुवर्णः तस्य यथा कप्यासंपुण्डरीकमेवम-क्षिणी" "स तस्मिन्नेवाकाशेस्त्रियमाजगामवहुशो-भमानामुमां हैमवतीं तांहोवाच किमेतद्यक्षमि-ति" "वाचं धेनुमुपासीत" "मनोवृह्मेत्युपासीत" "आदित्यो वृह्मेत्युपासीत" ऐसी२ वहुतसी वाक्यें वृाह्मण भाग में देखी जाती हैं यह सव वाक्यें आपके मतानुसार यदि मंत्र भागको व्याख्यान करने वाली होवें तो प्रतीकोपासना (याने प्रतिमा में ईश्वर की उपासना) भी वेदोक्त सिद्ध होती है और "याते रुद्रशिवातनूः" इत्यादिक मंत्रोंका

एवमक्षिणी" "सतस्मिन्नेवाकाशेस्त्रियमा जगामबहुशोभमानामुमां हैमवतींतां- होवाचकिमेतदयक्षमिति" "वाचंधेनुमु- पासीत" "मनोब्रह्मेत्युपासीत" "आदि त्योब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादीनिबहूनिप्र- तीकोपासनाविधिपराणिब्राह्मणवाक्या न्युपलभ्यंते तेषां मंत्रव्याख्यानरूपत्वे- पिप्रतीकोपासनायाः श्रुतिमूलत्वं सिद्धं

अर्थ पूर्वोक्त वाक्योंके द्वारासिद्ध होनाभी उचित है और श्रीव्यासकृत ब्रह्मसूत्रमें भी "ब्रह्मदृष्टिरु- त्कर्षात्" (अ० ४ सू० ५) इस सूत्रमें "आदित्यो- ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वाक्योंका अर्थ इस प्र- कार आक्षेप पूर्वक सिद्ध किया है कि परमेश्वरमें आदित्य भावना करना चाहिये वा आदित्यमें पर- मेश्वर भावना करनाचाहिये ऐसी शंका करके यह सिद्ध किया कि आदित्यमें परमेश्वरकी ही भावना करना चाहिये क्योंकि परमेश्वर उत्कृष्टहै और सब फलोंका देनेवालाहै इसमें राजभृत्यका दृष्टान्तभी

युक्तंच तेषां "यातेरुद्रशिवातनू" रित्यादिमन्त्रव्याख्यानपरत्वमपि। ब्रह्मसूत्रेपि (ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्) (अ०४सू०५) इत्यत्र ब्रह्मणिआदित्यदृष्टिःकर्त्तव्या? वा आदित्येब्रह्मदृष्टिरितिसंशय्य उत्कृष्टत्वादिहेतुनाराजभृत्यदृष्टान्तेनचादित्येब्रह्मदृष्टिरिति भगवत्पूज्यपादैर्व्यवस्थाकृता अनेन वेदार्थनिर्णयायप्रवृत्तसूत्रमूलत्वमपितस्यास्सूचितं अन्यथा ब्राह्मणभागप्रवर्त्तकानामृषीणां मिथ्याप्रलापित्वं

दिया हुआहै इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रतीकोपासना सूत्र प्रमाणक भीहै। अगर आप प्रतीकोपासनाको श्रुति सूत्र सिद्ध न मानोगे तो ब्राह्मण भाग प्रवर्तक ऋषियोंको मिथ्या वादित्व प्रसङ्ग होगा अगर यह कहो कि होने दो हमारी क्या हानि है तो आप के स्वामी दयानन्द जी के कथन की क्या गति होगी ? और उक्त विधि वाक्योंका दूसरा अर्थ होना असम्भव है

प्रसज्येत अस्तु काहानिरितिचेत्तर्हि द-
यानन्दप्रलापस्यकागतिर्भवेत् नह्येषाम
न्यार्थत्वं कल्पयितुंशक्यं विधिवाक्याना-
मनन्यपरत्वात् सर्वेषांमंत्राणांसर्वार्थक-
त्वकल्पनासंभवेन सर्वेषां सर्वाभीष्ट सिद्धि
प्रसंगात् स्पष्टार्थकानांवाक्यानांसाहस-
मात्रेणाऽन्यार्थत्वकल्पने प्रतारकत्वप्रस-
ङ्गाच्च। * किंच सर्वेषुशास्त्रेषु स्वमतस्थाप
नाय परकीयमतखण्डनप्रकरणे जीवब्र
ह्मणोरभेदरूपं वेदान्तसिद्धान्तमुपन्यस्य

अगर खींच खांच कर दूसरा अर्थ किया जावै तो किसी मंत्रोंके भी अर्थकी व्यवस्था सिद्ध न होगी क्योंकि धातुओंके अनेक अर्थ हो सकते हैं इससे स्पष्ट वाक्यों का साहस करके दूसरा अर्थ करना प्रतारणा मात्र है। और आप बेदान्तियों को नवीन बेदान्ती कैसे कहते हो षट्दर्शनों में अपने२ मतों के खंडन मंडन प्रकरणों में जीव ब्रह्म के अभेद रूप सिद्धांत को खंडन करते हुये शास्त्रकार उस बेदांत सिद्धांत को

खंडयन्तः तस्य नूतनत्वंवारयन्ति तेनच तानुद्दिश्य नवीनवेदान्तीति वदतः शास्त्र बुद्धिमान्द्यं स्पष्टीकृतं। किंच पराभिमतमंत्रभागे ईशावास्योपनिषदि "योसावसौ-पुरुषस्सोहमस्मि" इत्यत्र अनन्यार्थबोधकेनोत्तमपुरुषप्रयोगेन(आत्मेतितूपगच्छन्तिग्राहयन्तिच) अ०४सू०३ इत्यादिसूत्रैश्चजीव परयोरभेदाऽवगमात्कथंतत्सिद्धान्तस्यनवीनत्वं किंच त्वन्मतानुसारेण-

अनादित्व सूचन करते हैं ऐसे वेदांतियों को जो नवीन कहते हैं उनकी बुद्धि को क्या कहना चाहिये। और आप के अभिमत मंत्र भाग के ईशावास्योपनिषद् के "योसावसौ पुरुषस्सोहमस्मि" इस वाक्य में अनन्यार्थबोधक "सोहमस्मि" इस उत्तम पुरुष प्रयोग से जीव ब्रह्म का अभेद स्पष्ट ही सिद्ध होता है इससे वेदांतियों का नवीन होना कैसे सिद्ध हो सकता है और श्रीव्यासकृत ब्रह्मसूत्रके "आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च" अ० ४ सू० ३ इस सूत्र में जीवब्रह्म का अभेद स्पष्ट ही सिद्ध हुआ है

ब्राह्मणभागस्य मंत्रव्याख्यापरत्वेपि "प्रज्ञाप्रतिष्ठाप्रज्ञानंब्रह्म" "अहंमनुरभवंसूर्यश्च" "अहंब्रह्माऽस्मि" त्वंवा अहमस्मि भगवोदेवतेअहंवैत्वमसिदेवते" "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" "सयश्चायंपुरुषेयश्चाऽसावादित्येसएकः" "तत्वमसि" "शान्तं शिवमद्वैतंचतुर्थंमन्यन्तेसआत्मा सविज्ञेयः" "अयमात्माब्रह्म" "अन्योसावन्योहमस्मिनसवेद" "उदरमंतरंकुरुते अथत स्यभयंभवति" "मृत्योस्समृत्युमाप्नोतिय

इससे वेदांती नवीन कैसे ठहर सकते हैं और आपके मतानुसार ब्राह्मणभाग मंत्र व्याख्यान रूप होवे तो भी "प्रज्ञा प्रतिष्ठाप्रज्ञानं ब्रह्म,, अहंमनुरभवंसूर्यश्च" "अहंब्रह्मास्मि" "त्वंवाअहमस्मि देवते अहंवैत्वमसि देवते" "ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति" "सयश्चायं पुरुषेयश्चासावादित्येस एकः" "तत्वमसि" "शांतंशिवमद्वैतम् चतुर्थंमन्यंते स आत्मासाविज्ञेयः" "अयमात्माब्रह्म" अन्यो- "सावन्योहमस्मिनसवेद" "उदरमन्तरं कुरुते

इहनानेवपश्यति" इत्यादीन्यनन्यार्थबोधकानि मध्यमोत्तमपुरुषप्रयोगघटितानि जीवेशयोरभेदबोधकानि तद्भेदनिन्दापराणिच वाक्यानि सहस्त्रशस्तत्रोपलभ्यमानानि केषांमंत्राणामर्थान् बोधयन्ति। कथमिव ते मन्त्रव्याख्यातृकामैरेतानित्वत्प्रतिपक्षभूतानि वाक्यान्यत्रप्रयुक्तानि कथमिव तेषांब्राह्मणभागप्रवर्त्तकानां

अथ तस्य भयंभवति" "मृत्योस्समृत्यु माप्नोति यइहनानेव पश्यति इत्यादि अनन्यार्थ बोधक मध्यमोत्तमपुरुषप्रयोगघटित जीव ब्रह्म के अभेद बोधक और जीव ब्रह्म के भेद दृष्टि निन्दा बोधक हजारों वाक्यें ब्राह्मण भाग में उपलभ्यमान होती हैं अब हम आप से पूछते हैं कि यह सब उपरोक्त वाक्यैं किन २ मंत्रों के अर्थों को बोधन करती हैं? और आपके प्रतिपक्षरूप जीव ब्रह्म के अभेद बोधक वाक्यें इस ब्राह्मणभाग में इसके प्रवर्तक ऋषियों ने कैसे डाली हैं? और इन ऋषियों का यदि भेद वाद इष्ट होवे

भेदवादः सिद्ध्येत् कथमिव त्वदीयभेदवादस्याऽनादित्वंभवेत् कथमिव तैर्जीवपरभेदबोधकानिस्पष्टानिवाक्यान्यत्र नप्रयुक्तानि प्रयुक्तान्यपि चेद्भेदस्य लोकप्रसिद्धत्वेन तेष्वज्ञातज्ञापकत्वरूपप्रामाण्याऽभावात्कथमिव तानि वाक्यानि प्रमाणपथमारोहेयुः अर्थवत्वेसत्यऽज्ञातज्ञापकत्वं प्रामाण्यमितिहि तंत्रकृत्सिद्धांतः

तो उसकी सिद्धि कैसे होगी और आप के मतमें भेद वाद अनादि कैसे सिद्ध हो सकेगा? उन ऋषियों ने जीव ब्रह्मके भेद बोधन करने वाली स्पष्ट वाक्यैं क्यों नहीं लिखी थी? अगर लिखा भी हो तो वै प्रमाण सिद्ध कैसे होगी क्योंकि अज्ञातार्थबोधकरूप प्रमाण उनमें नहीं है और लोकप्रसिद्ध भेद को सिद्ध करना भी व्यर्थ है इसी अभिप्राय से शास्त्रकारों ने प्रयोजन सहित अज्ञातार्थबोधक वाक्यको ही प्रमाण माना है और लोकप्रसिद्ध होनेसे "अग्निर्हिमस्यभेषजम्" इत्यादि वाक्यों को अनुवाद माना है

अतएव "अग्निर्हिमस्य भेषज" मित्यादी-
नामनुवादकत्वमुपपद्यते नह्युदाहृत-
वाक्यानां मंत्राऽस्पर्शित्वं कल्पयितुं शक्यं
तद्व्याख्यातॄणां याज्ञवल्क्यादीनां प्रता-
रकत्वप्रसंगेन तद्व्याख्यानरूपस्य ब्रा-
ह्मण भागस्याऽप्रामाण्यापत्तेः नह्यंशतः-
प्रामाण्यमंशतो ऽप्रामाण्यमित्यर्द्धजर-
तीयं संभवति सर्वेषां सर्वत्र यथाकामं

और अगर आप यह कहो कि ब्राह्मण प्रवर्तक
ऋषियों ने उक्त वाक्यें अपने तरफ से लिख दिया
है मंत्र के व्याख्यान रूप नहीं है यह आप का
कथन ठीक नहीं है क्योंकि उन ऋषियों को प्रतारक
त्व प्रसङ्ग होनेसे उनका बनाया हुआ ब्राह्मण भाग
भी अप्रमाण होगा और आप यह नहीं कह सकते
है कि ब्राह्मणभाग में कोई अंश तो प्रमाण है और
कोई अंश अप्रमाण है ऐसा कहने से तो वही
मसल होगी कि वृद्धा स्त्री के सब अंग को
चाह कर केवल मुख को चाहना इस अर्धजर
यन्याय के अनुरागी आप को होना पड़ेगा

प्रामाण्याऽप्रामाण्यकल्पनोपपत्त्या शा-
स्त्रीयव्यवहारलोपापत्तेरित्यलमर्द्धचार्वा
कमताऽतिप्रपंचेन। वेदोद्भवञ्च युक्त्याढ्यं
मतमेतन्महोत्तमं।इतिमोहेनजल्पंतितेषां
मोहोत्रसूचितः ॥ * इतिश्रीपरमहंसपरि
व्राजकदाक्षिणात्यश्रीब्रह्मानन्दतीर्थकृत
दयानन्दमोहप्रकाशस्समाप्तः ॥ *

और यदि सब मनुष्य अपनी इच्छानुसार प्रमा-
ण और अप्रमाण कल्पना करके धर्म व्यवस्था
करने लगेंगे तो शास्त्र व्यवहारही लोप हो जायगा
और जो नवीन लोग हमारा मतवेद मूलकहै
युक्ति युक्त है अत्युत्तम है और वेद वेदाङ्ग
कल्प सूत्रानुयायी लोगपोपहै और वेदान्तअन्धेरा
वेदांती नवीनहै ऐसी वहुतसी बातै भ्रमसे कहतेहैं
उन कथनोका यह भ्रम मूलकता अर्थात् वेद वेदाङ्ग
न्याय मीमांसादि शास्त्राऽज्ञानमूलता दिखायी है
इस विषयमें मेरी वहुत कुछ लिखनेकी इच्छा थी
परन्तु हिन्दीभाषा अच्छी तरह न जाननेके कारण
सेइस अर्द्धचार्वाक मतको अवयहीं समाप्त करताहूं॥

इतिश्रीपरमहंसपरिव्राजकदाक्षिणात्य श्रीब्रह्मानन्दतीर्थकृत दयानन्दमोहप्रकाशभाषानुवाद.स०
ग्रहवेदनवेन्द्वब्दे वेदेन्दुवसुभूमिते।शके च फाल्गुने मासेसितपक्षेसुसंस्कृतः